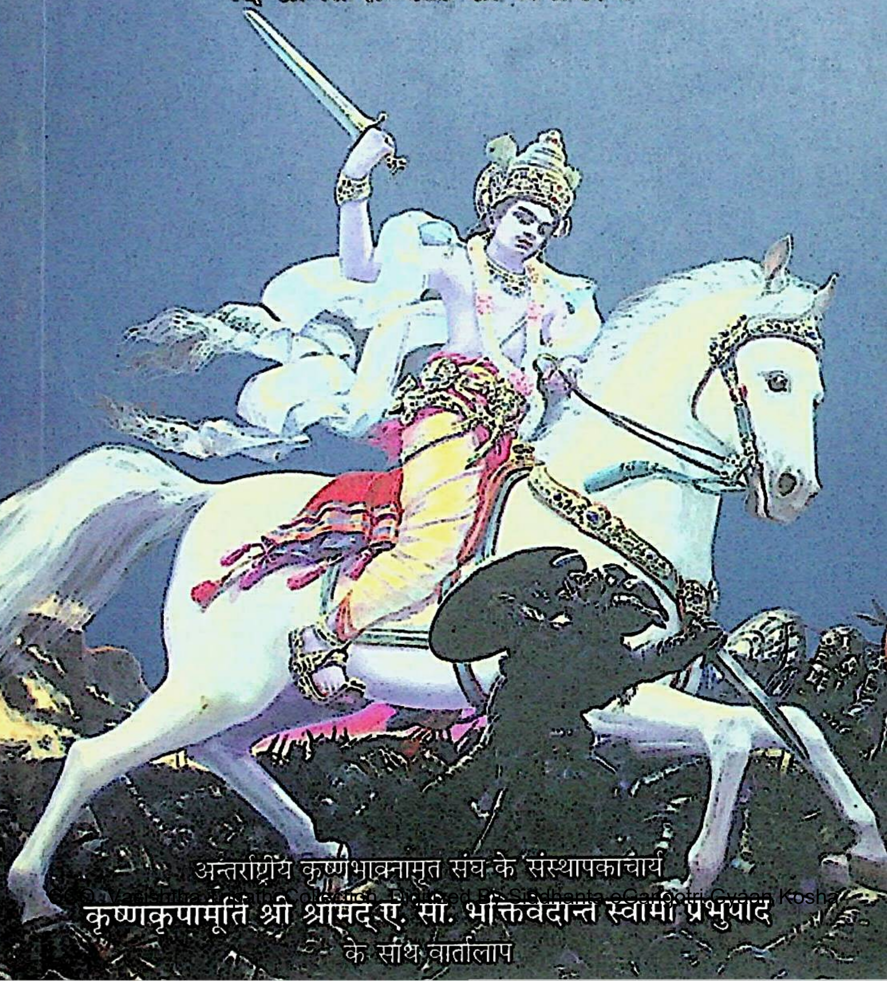
हरे कृष्ण चुनौती

दिग्भ्रमित सभ्यता का अनावरण



अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के संस्थापकाचार्य

कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

के साथ वार्तालाप

हरे कृष्ण चुनौती

दिग्भ्रमित सभ्यता का पर्दाफाश

कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद द्वारा विरचित वैदिक ग्रंथरत्न :

श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप
श्रीमद्भागवतम् (१८ भागों में)
श्रीचैतन्य-चरितामृत (९ भागों में)
लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण
भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु का शिक्षामृत
भक्तिरसामृतसिन्धु
श्रीउपदेशामृत
श्रीईशोपनिषद्
भागवत का प्रकाश
अन्य ग्रहों की सुगम यात्रा
आत्म-साक्षात्कार का विज्ञान
कृष्णभावनामृत : सर्वोत्तम योगपद्धति
पूर्ण प्रश्न पूर्ण उत्तर
देवहूतिनन्दन भगवान् कपिल का शिक्षामृत
प्रह्लाद महाराज के दिव्य उपदेश
महारानी कुन्ती की शिक्षाएँ
रसराज श्रीकृष्ण
योगपथ : आधुनिक युग के लिए योग
जीवन का स्रोत जीवन
जन्म-मृत्यु से परे
कृष्ण की ओर
राजविद्या : ज्ञान का राजा
कृष्णभावनामृत की प्राप्ति
कृष्णभावनामृत : एक अनुपम उपहार
भगवद्दर्शन पत्रिका (संस्थापक)

अधिक जानकारी तथा सूचीपत्र के लिए लिखें :
भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, इस्कॉन मंदिर, हरे कृष्ण धाम, जुहू, मुंबई ४०० ०४९.

ये पुस्तकें हरे कृष्ण केन्द्रों पर भी उपलब्ध हैं। कृपया अपने निकटस्थ केन्द्र से सम्पर्क करें।

॥ श्री श्री गुरु-गौराङ्गौ जयतः ॥

हरे कृष्ण चुनौती

दिग्भ्रमित सभ्यता का पर्दाफाश

अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के संस्थापकाचार्य
कृष्णकृपामूर्ति
श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद
के साथ वार्तालाप



भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट

इस ग्रंथ की विषयवस्तु में जिज्ञासु पाठकगण अपने निकटस्थ किसी भी इस्कॉन केन्द्र से अथवा निम्नलिखित पते पर पत्र-व्यवहार करने के लिए आमंत्रित हैं :

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट
हरे कृष्ण धाम, जुहू
मुंबई ४०० ०४९

वेब / ई-मेल :
www.indiabbt.com
admin@indiabbt.com

The Hare Kṛṣṇa Challenge (Hindi)

1st printing : 5,000 copies
2nd to 8th printings : 1,28,000 copies
9th Printing, March 2013 : 25,000 copies

ISBN : 978-93-82716-53-2

भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट द्वारा
प्रकाशित एवं मुद्रित।

A3PP

विषय-सूची

भूमिका

विश्वव्यापी हरे कृष्ण आन्दोलन के संस्थापकाचार्य श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद (श्रील प्रभुपाद के रूप में सुविख्यात) सर्वप्रथम १९६५ में भारत से न्यूयोर्क आये, जहाँ पर उन्होंने एक वर्ष बाद अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ की स्थापना की। उनका उद्देश्य कृष्णभावनामृत का प्रचार करना था। यह वैदिक शास्त्रों में वर्णित ईशप्रेम को विकसित करने की व्यावहारिक तथा पूर्ण विधि है। श्रील प्रभुपाद द्वारा इन शास्त्रों के जो विशद अनुवाद तथा भाष्य लिखे गये हैं वे उन्हें निश्चित रूप से सदा सर्वदा के महानतम धार्मिक विद्वानों की पंक्ति में स्थापित करते हैं। उन्होंने ८० से अधिक पुस्तकों में कृष्ण के विज्ञान, दर्शन तथा लीलाओं को प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत किया और उसी के साथ-साथ विश्व भर में हरे कृष्ण आन्दोलन की प्रमुख धार्मिक शक्ति के रूप में स्थापना की।

श्रील प्रभुपाद ने कृष्णभावनामृत को आध्यात्मिक मूल्यों से विहीन समाज के लिए सकारात्मक विकल्प के रूप में जिस तरह शक्तिशाली ढंग से प्रस्तुत किया, उससे पश्चिम के युवा बुद्धिजीवी विशेषतया आकृष्ट हुए। इन युवा बुद्धिजीवियों में से बहुतेरे जीवन का सही अर्थ खोज रहे थे और वे भौतिकतावाद, नास्तिकतावाद

तथा छद्म अर्ध-आस्तिकतावाद से ऊब चुके थे। प्रभुपाद की शिक्षाएँ तथा उनका जीवन प्रदर्शित करते हैं कि प्राचीन वेदों का धर्म किसी भी तरह बासी नहीं, अपितु प्रत्येक स्थान के प्रत्येक व्यक्ति के लिए, विशेषतया इस आधुनिक युग में, पूरी तरह से प्रासंगिक है। प्रभुपाद अपने सभी पूर्ववर्ती असली धर्माचार्यों की तरह भौतिकतावादी समाज के विरुद्ध बोलते रहे, जो लोगों को वास्तविक धार्मिक आवश्यकताओं के प्रति अन्धा बनाकर नित्य बढ़ती रहती जटिलताओं का दास बनाता है।

इसमें सन्देह नहीं कि श्रील प्रभुपाद आधुनिक समाज की आध्यात्मिक बुराइयों के विरुद्ध बलपूर्वक तथा स्पष्ट रूप से लगातार बोलते रहे, किन्तु उनके मन में द्वेष का लेश भी नहीं था। उन्होंने न तो स्वयं किसी की अन्धाधुन्ध आलोचना की, न ही अपने शिष्यों को ऐसा करने दिया। अपने निजी व्यवहार में बुराइयों की भर्त्सना करने से बचते हुए वे अन्यों की अच्छाइयों को प्रोत्साहित करते रहे। वे प्रामाणिक आध्यात्मिक शिक्षकों का, यथा ईसा मसीह का, सदैव सम्मान करते रहे और उनकी प्रशंसा करते रहे। इस तरह उनका उद्देश्य किसी का विरोध करना या उसकी भर्त्सना करना न होकर, लोगों को जागृत करना था जिससे वे कृष्णभावनामृत में जीवन का असली सुख पा सकें।

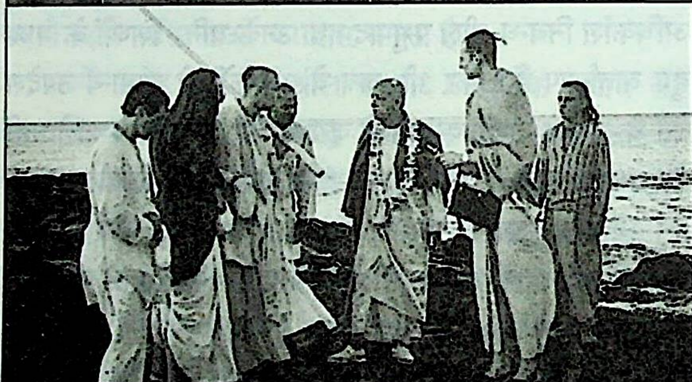
जब १९७७ की साल के मध्य में हरे कृष्ण आन्दोलन की पत्रिका 'बैक टु गॉडहेड' में 'श्रील प्रभुपाद वाणी' नामक स्तम्भ में उनकी बातचीत के कुछ ऐसे अंश प्रकट होने शुरू हुए, जिसमें श्रील प्रभुपाद ने कृष्णभावना के सिद्धान्तों को अनुपचारिक तथा

प्रभावयुक्त ढंग से प्रस्तुत किये थे, तब वे बहुत प्रसन्न हुए। इस 'श्रील प्रभुपाद वाणी' स्तम्भ के संग्रह से पाठकों को आधुनिक जगत के प्रति एक शुद्ध भक्त के दृष्टिकोण को जानने का लाभ उठाने का अवसर मिलेगा।

इस पुस्तक में संग्रहीत निबन्ध श्रील प्रभुपाद के विशिष्ट भाव को चित्रित करते हैं। पाठक को यह नहीं सोचना चाहिए कि प्रभुपाद सदैव इसी प्रबल स्वर में बोलते थे। इस पुस्तक के अधिकांश निबन्ध श्रील प्रभुपाद तथा उनके घनिष्ट शिष्यों के मध्य हुए वार्तालाप हैं। फिर भी, जब वे अभक्तों को सामान्य उपदेश देते थे, तब वे दार्शनिक रूप से जरा भी समझौता करने वाले नहीं थे, यद्यपि वे इन्हीं उपदेशों को कम तीक्ष्ण स्वर में ढाल सकते थे। श्रील प्रभुपाद के दूसरे पहलू को देखने के लिए, उनकी पुस्तकों को पहली बार पढ़ने वाला पाठक, भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट के दूसरे प्रकाशनों जैसे 'पूर्ण प्रश्न, पूर्ण उत्तर' को देख सकता है।

श्रील प्रभुपाद एक परिपूर्ण वैदिक साधु हैं। साधु शब्द का एक अर्थ "विच्छेद करने वाला" भी है और इस छोटी सी पुस्तक के पाठक निश्चित रूप से अनुभव करेंगे कि उनके जीवन भर की भ्रान्तियाँ विच्छेदित हो रही हैं। हरे *कृष्ण चुनौती—दिग्भ्रमित सभ्यता का पर्दाफाश* नामक यह पुस्तिका विचारोत्तेजक, विवादास्पद तथा प्रासंगिक है। इसके निष्कर्ष सार्थक हैं और किसी भी विचारवान व्यक्ति को इसे आदि से अन्त तक पढ़ जाने से हिचकना नहीं चाहिए।


BBC







१

अपूर्ण जगत में पूर्ण ज्ञान की खोज

यह वार्तालाप १९७३ में लास एन्जलिस के हरे कृष्ण केन्द्र में श्रील प्रभुपाद तथा कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय—इरवीन के भौतिकी के प्रोफेसर डॉ. ग्रेगरी बेनफोर्ड के मध्य हुआ।

डॉ. बेनफोर्ड : शायद आप पाश्चात्य धर्मशास्त्रों में चर्चित 'बुराई की समस्या' से परिचित होंगे। आखिर, बुराई का अस्तित्व क्यों है?

श्रील प्रभुपाद : बुराई तो अच्छाई की अनुपस्थिति है, जिस प्रकार अंधकार सूर्यप्रकाश की अनुपस्थिति है। यदि आप सदा अपने को प्रकाश में रखें, तो अंधकार का प्रश्न कहाँ रहा? ईश्वर सर्वमंगलमय हैं। इसलिए यदि आप अपने को सदैव ईश-भावनामृत में रखें, तो बुराई रहेगी ही नहीं।

डॉ. बेनफोर्ड : किन्तु यह जगत बुरे लोगों से भरापुरा बनाया ही क्यों गया?

श्रील प्रभुपाद : पुलिस विभाग क्यों बनाया गया है? इसलिए कि उसकी आवश्यकता है। इसी तरह कुछ जीव इस भौतिक जगत का भोग करना चाहते हैं, अतएव ईश्वर इसका सृजन करते हैं। वे उस पिता की भाँति हैं, जो अपने उपद्रवी बच्चों को खेलने

के लिए एक अलग कमरा दे देता है। अन्यथा वे नटखट बच्चे सदैव उसके काम में विघ्न डालते रहेंगे।

डॉ. बेनफोर्ड : तब तो यह जगत एक कारागार के समान है?

श्रील प्रभुपाद : हाँ, यह एक कारागार है। इसीलिए यहाँ कष्ट है। कारागार में आप सुख-सुविधा की आशा नहीं कर सकते, क्योंकि जब तक कष्ट नहीं मिलेगा, तब तक कैदियों को कोई शिक्षा नहीं मिलेगी। इसका उल्लेख *भगवद्गीता* में किया गया है—*दुःखालयम् अशाश्वतम्*। *दुःखालयम्* का अर्थ है, "कष्ट का स्थान।" और *अशाश्वतम्* का अर्थ है, "अस्थायी।" आप समझौता करके यह नहीं कह सकते, "ठीक, मैं कष्ट भोग रहा हूँ, किन्तु मुझे इसकी परवाह नहीं—मैं यहीं रहता रहूँगा।" आप यहाँ नहीं रह सकते; आपको ठोकर मारकर निकाल दिया जाएगा। अब आप यह सोच रहे हैं कि मैं अमरीकी हूँ, मैं एक महान विज्ञानी हूँ, मैं सुखी हूँ और अच्छी तनख्वाह पा रहा हूँ। यह तो ठीक है, किन्तु आप इस पद पर बने नहीं रह सकते। ऐसा दिन आएगा, जब आपको ठोकर मारकर निकाल दिया जाएगा और आप यह नहीं जानते कि आप अमरीकी बनेंगे या विज्ञानी या बिल्ली, कुत्ता या देवता। आप नहीं जानते।

डॉ. बेनफोर्ड : मैं सोचता हूँ कि शायद मैं कुछ भी न बनूँ।

श्रील प्रभुपाद : नहीं, यह तो दूसरे प्रकार का अज्ञान है। कृष्ण *भगवद्गीता* (२.१३) में बतलाते हैं—*देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा, तथा देहान्तरप्राप्तिः*—पहले आप एक बालक के शरीर में रहते हैं, फिर एक युवा पुरुष के और भविष्य में आप

एक वृद्ध मानव–शरीर में होंगे।

डॉ. बेनफोर्ड : किन्तु वृद्ध पुरुष होने पर हो सकता है कि मैं कुछ न होऊँ।

श्रील प्रभुपाद : नहीं, नहीं। *तथा देहान्तरप्राप्तिः*—मृत्यु के बाद आप दूसरे शरीर में चले जाएँगे। इसलिए आप यह नहीं कह सकते कि मैं "कुछ नहीं होऊँगा"। अवश्य, आप कहने को कुछ भी कह सकते हैं, लेकिन नियम इससे भिन्न हैं। आप नियम को जानते हों अथवा न जानते हों, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। नियम अपना कार्य करेगा। उदाहरणार्थ, यदि आप सोचते हैं, "मैं तो आग को छूऊँगा, किन्तु यह मुझे जलायेगी नहीं।" यह तथ्य नहीं है। यह तो जलायेगी। इसी तरह आप सोच सकते हैं कि मृत्यु के बाद कुछ नहीं है, किन्तु यह तथ्य नहीं है।

डॉ. बेनफोर्ड : क्या कारण है कि मुझ जैसा व्यक्ति, जो जगत को तर्कपूर्ण ढंग से समझने का प्रयास कर रहा हो, कोई ऐसा मार्ग नहीं ढूँढ़ पा रहा जिससे इसको समझा जा सके?

श्रील प्रभुपाद : आप चीजों को युक्तियुक्त जानने का प्रयास तो कर रहे हैं, किन्तु उचित शिक्षक के पास नहीं जा रहे।

डॉ. बेनफोर्ड : किन्तु मुझे लगता है कि जगत का अध्ययन करके मैं ज्ञान प्राप्त कर सकता हूँ और इस ज्ञान को परखने का साधन भी है। आप पहले संकल्पना करते हैं, प्रयोग करते हैं, अपने विचारों की पुष्टि करते हैं और तब यह जानने का प्रयास करते हैं कि क्या आप इन विचारों को व्यावहारिक जगत में लागू कर सकते हैं या नहीं।

श्रील प्रभुपाद : यह अज्ञानता का एक अन्य प्रकार है, क्योंकि आप यह जानते नहीं कि आप अपूर्ण हैं।

डॉ. बेनफोर्ड : ओह! मैं जानता हूँ कि मैं पूर्ण नहीं हूँ।

श्रील प्रभुपाद : तो फिर आप के इस तरह या उस तरह से जगत का अध्ययन करने के प्रयास से क्या लाभ? यदि आप अपूर्ण हैं, तो परिणाम अपूर्ण ही होगा।

डॉ. बेनफोर्ड : यह सच है।

श्रील प्रभुपाद : तो फिर अपना समय क्यों बर्बाद करना चाहिए?

डॉ. बेनफोर्ड : किन्तु ज्ञान प्राप्त करने का अन्य कोई साधन भी तो नहीं दिख रहा।

श्रील प्रभुपाद : भौतिक ज्ञान के लिए भी आपको विश्वविद्यालय जाना पड़ता है और किसी प्रोफेसर से परामर्श लेना पड़ता है। इसी तरह जब आप आध्यात्मिक ज्ञान अर्थात् पूर्ण ज्ञान सीखना चाहते हैं, तो आपको किसी पूर्ण शिक्षक के पास जाना होता है। तभी आपको पूर्ण ज्ञान मिल पाएगा।

डॉ. बेनफोर्ड : किन्तु कोई यह कैसे जाने कि शिक्षक पूर्ण है या नहीं?

श्रील प्रभुपाद : यह कठिन नहीं है। पूर्ण शिक्षक वह है, जिसने किसी अन्य पूर्ण शिक्षक से शिक्षा ली हो।

डॉ. बेनफोर्ड : किन्तु इससे तो समस्या का हल एक कदम तक ही आगे जाता है।

श्रील प्रभुपाद : नहीं, चूँकि एक पूर्ण शिक्षक—कृष्ण—हैं,

जिन्हें सभी वर्गों के शिक्षक स्वीकार करते हैं। भारत में अभी भी वैदिक संस्कृति है, जिसे वैदिक विद्वान पढ़ाते हैं और ये सारे वैदिक शिक्षक कृष्ण का परम शिक्षक के रूप में स्वीकार करते हैं। वे कृष्ण से ज्ञान ग्रहण करके उसी की शिक्षा देते हैं।

डॉ. बेनफोर्ड : तो मैं यदि किसी से मिलूँ, जो कृष्ण को पूर्ण शिक्षक के रूप में स्वीकार करता हो, क्या वह पूर्ण शिक्षक होगा?

श्रील प्रभुपाद : हाँ। जो भी कृष्ण के उपदेशों की शिक्षा देता है, वह पूर्ण शिक्षक है।

डॉ. बेनफोर्ड : तो क्या यहाँ के सारे भक्तगण पूर्ण शिक्षक हैं?

श्रील प्रभुपाद : अवश्य। क्योंकि वे केवल कृष्ण की शिक्षाओं को ही पढ़ाते हैं। हो सकता है कि वे पूर्ण न हों, किन्तु वे जो कुछ भी बोलते हैं वह सही है, क्योंकि इसकी शिक्षा कृष्ण द्वारा दी गई है।

डॉ. बेनफोर्ड : तो क्या आप पूर्ण नहीं हैं?

श्रील प्रभुपाद : नहीं, मैं पूर्ण नहीं हूँ। हममें से कोई यह दावा नहीं करता कि हम पूर्ण हैं—हममें अनेक दोष हैं। लेकिन चूँकि हम कृष्ण की शिक्षाओं से परे अन्य कुछ नहीं कहते, इसलिए हमारी शिक्षा पूर्ण है। हम तो उस डाकिये के समान हैं, जो आपके लिए एक हजार डालर का मनीआर्डर लाता है। वह धनी व्यक्ति नहीं होता, किन्तु यदि वह मनीआर्डर को उसी रूप में आपको देता है, तो आप लाभान्वित होते हैं। वह धनी व्यक्ति नहीं होता, किन्तु उसका पूर्ण व्यवहार—उसकी ईमानदारी—पूर्ण

है। इसी तरह हम पूर्ण नहीं हैं, हम अपूर्णताओं से भरे हुए हैं। किन्तु हम कृष्ण की शिक्षा से परे नहीं जाते। यही हमारी विधि है। इसलिए हमारी शिक्षाएँ पूर्ण हैं। •

२

इन्द्रियतृप्ति पक्षियों के लिए है

यह वार्तालाप रोम में प्रातःकालीन भ्रमण के समय मई १९७४ में श्रील प्रभुपाद तथा उनके कुछ शिष्यों के बीच हुआ था।

श्रील प्रभुपाद : *अदान्तगोभिर्विशतां तमिस्रं पुनः पुनश्चर्वित-चर्वणानाम्*—लोग जन्म-जन्मान्तर मात्र अपनी इन्द्रियों का आनन्द लेने का प्रयत्न करते हैं। जन्म-जन्मान्तर घूम फिर कर वही चीजें—वही खाना, वही सोना, वही संभोग, वही आत्मरक्षा—चाहे मनुष्य के रूप में हो या कुत्ते के रूप में। *पुनः पुनश्चर्वितचर्वणानाम्*—चबाये हुए को बारम्बार चबाये जाना। आप देवता बन जाँय या कुत्ता, भौतिक जगत में हर एक को इन चार बातों की—खाने, सोने, संभोग करने तथा आत्मरक्षा करने की—सुविधा प्रदान की गई है।

वस्तुतः यदि इस क्षण कोई संकट आन खड़ा हो, तो हम मनुष्य उसकी चपेट में आ सकते हैं, किन्तु एक पक्षी फुर्र से उड़ जाएगा। अतः पक्षी को अपनी रक्षा के लिए अधिक अच्छी सुविधा मिली है। है न? मान लीजिये कि सहसा कोई मोटरकार हमारी ओर सीधी आ जाय, तो हम सभी मारे जाएँगे। हम कुछ भी नहीं कर सकते, किन्तु छोटे से छोटा पक्षी कहेगा "धत्! मैं

तो चला।" वह ऐसा कर सकता है। है न? अतएव उसके रक्षा के उपाय हमसे बेहतर हैं।

इसी तरह यदि हम संभोग करना चाहते हैं, तो हमें उसके लिए व्यवस्था करनी होगी। उसके लिए कोई संगिनी तथा उपयुक्त समय और स्थान तलाशना होगा। किन्तु मादा पक्षी सदैव ही नर पक्षी के इर्द-गिर्द रहती है। चाहे कबूतर को लें या गौरैया को। आपने देखा है? वे तुरन्त संभोग के लिए उद्यत रहती हैं। और भोजन के लिए पक्षी क्या करते हैं? "ओह, वे रहे कुछ फल!" तुरन्त ही पक्षी खाने लगता है। इसी तरह उनका सोना भी सरल तथा सुविधाजनक होता है।

तो यह मत सोचिये कि ये सुविधाएँ मात्र आपके गगनचुम्बी भवनों में ही उपलब्ध हैं। पक्षियों तथा पशुओं को भी ये सुलभ हैं। ऐसा नहीं है कि जब तक आपके पास किसी गगनचुम्बी प्रासाद में एक बहुत अच्छा घर न हो तब तक आपको खाने, सोने, रक्षा करने तथा संभोग की ये सभी सुविधाएँ प्राप्त नहीं हो सकतीं। आप इन्हें किसी भी योनि के किसी भी भौतिक शरीर में प्राप्त कर सकते हैं—*विषय: खलु सर्वत: स्यात्।* *विषय* का अर्थ है भौतिक इन्द्रिय-भोग की सुविधाएँ। हमारी विधि है *विषय छाडिया से रसे मजिया।* मनुष्य को इस अतुष्टकारी भौतिक भोग का त्याग कर देना चाहिए और दिव्य आनन्द का आस्वाद करना चाहिए, जो आध्यात्मिक सुख का रसास्वादन है। यह एक भिन्न स्तर का आनन्द है।

किन्तु आजकल लोग देहात्मबोध से इतने मूर्ख बन गये हैं

कि उनका एकमात्र आनन्द यही तथाकथित भौतिक भोग है। इसीलिए शास्त्र उपदेश देते हैं, "यह क्षणिक निम्नकोटि का भोग भौतिक जीवन के किसी भी रूप में—चाहे मनुष्य के रूप में या पक्षी अथवा पशु के रूप में—उपलब्ध है।" तुम इस विभिन्न योनियों में इसी एक अतुष्टकारी भोग के पीछे बारम्बार क्यों दौड़ लगाते रहते हो? *पुनः पुनः चर्वितचर्वणानाम्।* "तुम इन सभी विभिन्न रूपों में उसी एक बेहूदा अतुष्टकर कार्य को बारम्बार करे जा रहे हो।"

किन्तु *मतिर्न कृष्णे परतः स्वतो वा*—जो लोग भौतिक ऐन्द्रियभोग द्वारा मूर्ख बना दिए गये हैं, वे न तो अपने प्रयत्न से, न ही गुरु के उपदेश से कृष्णभावनाभावित हो सकते हैं। और *मिथोऽभिपद्येत*—ये मूर्ख लोग यह पूछने के लिए अनेकानेक गोष्ठियाँ तथा बैठकें कर सकते हैं कि "जीवन की समस्याएँ क्या हैं?"—फिर भी ये कृष्णभावनामृत की विधि को अपना नहीं सकते।

क्यों? *गृह-व्रतानाम्*—जब तक उनमें यह संकल्प है कि, "हम इस भौतिक जगत में सुखी रहेंगे," तब तक वे कृष्णभावनामृत को नहीं अपना सकते। *गृह* का अर्थ "घर" तथा "शरीर" दोनों है। जो लोग इस भौतिक शरीर में सुखी बनना चाहते हैं, वे कृष्णभावनामृत नहीं अपना सकते, क्योंकि उनकी इन्द्रियाँ *अदान्तगोभिः* अर्थात् अत्यधिक अनियन्त्रित हैं। इसलिए इन लोगों को चबाये हुए को पुनः पुनः चबाने की कठिन परीक्षा से बारम्बार गुजरना पड़ता है। बारम्बार वही ऐन्द्रिय भोग—

खाना, सोना, सम्भोग करना तथा आत्मरक्षा करना।

शिष्य : तो क्या हमारा कार्य लोगों को यह विश्वास दिलाना है कि वे भौतिक जगत में सुखी नहीं हो सकते?

श्रील प्रभुपाद : हाँ। उन्हें इसका विश्वसनीय अनुभव पहले से प्राप्त हो गया है। वे नित्य ही अनेकानेक दलों की स्थापना करते रहते हैं, कई तरह की योजनाएँ बनाते रहते हैं फिर भी वे सुखी नहीं हैं। और तो और, इतने पर भी वे ऐसे महामूर्ख हैं कि बारम्बार पराजित होने पर भी वे पहले चबाये हुए को ही चबा रहे हैं—उसी वस्तु को बारम्बार, किन्तु कुछ भिन्न रूपों में। साम्यवादियों तथा पूँजीपतियों में अन्तर क्या है? आखिर, ये दोनों ही वर्ग इसी ताक में रहते हैं कि अपने ही ऐन्द्रिय भोग के लिए वस्तुओं को किस तरह बेहतर रूप में व्यवस्थित की जाय। ये दोनों वर्ग परस्पर लड़-भिड़ रहे हैं, लेकिन प्रत्येक का लक्ष्य है *गृह-व्रतानाम्*—हम इसी भौतिक जगत में रहेंगे और यहीं सुखी होंगे।

शिष्य : भाव यह है कि यदि हमें पर्याप्त भोजन तथा विषयवासना प्राप्त होगी, तो हम सुखी होंगे।

श्रील प्रभुपाद : बस। तब लोग नपुंसक बन जाते हैं और वैद्य से याचना करते हैं, "मुझे कोई संभोग-बटी दीजिये।" देखा? *पुनः पुनः चर्वितचर्वणानाम्।* उसी पुरानी घिसी-पिटी वस्तु को चबाना। और जब वे घर पर विषयभोग से ऊब जाते हैं तो कहते हैं, "चलो, वेश्या के पास चला जाय। चलो, नंगा नाच देखा जाय।" उनके पास कोई अन्य विचार नहीं होते। अतः लोगों का

यह वर्ग कृष्णभावनामृत को नहीं अपना सकता। सर्वप्रथम मनुष्य को यह जान लेना चाहिए कि "मैं इस भौतिक जगत का कुछ भी नहीं हूँ। मैं आत्मा हूँ। मेरा सुख तो आध्यात्मिक जगत में है।" तभी वह असली मनुष्य बनता है और आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है।

अतएव अगला प्रश्न है, कोई आत्मा या कृष्णभावनामृत में किस तरह रुचि ले? कैसे? यही प्रश्न है। पशु तथा पशुओं-जैसे मनुष्य इसमें रुचि नहीं ले सकते।

नैषां मतिस्तावदुरुक्रमाङ्घ्रिं
स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः।
महीयसां पादरजोऽभिषेकं
निष्किञ्चनानां न वृणीत यावत्॥

श्रीमद्भागवत (७.५.३२) का वचन है, "इन धूर्तों तथा मूर्खों की चेतना को अद्भुत कार्य करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण के उन चरणारविन्दों की ओर तब तक नहीं मोड़ी जा सकती, जब तक वे भगवान् के किसी ऐसे भक्त के चरणकमलों पर अपना शीश नहीं झुकाते जो निष्किंचन है, जिसे इस भौतिक जगत से कोई लाभ नहीं उठाना है और जो केवल कृष्ण में रुचि लेता है। यदि ऐसे महान भक्त के चरणों पर शीश झुकाने या उसकी चरण-रज लेने का भी अवसर प्राप्त हो सके, तो आपकी आध्यात्मिक उन्नति सम्भव है; अन्यथा नहीं। महान भक्त के चरणकमल की धूलि आपकी सहायता कर सकती है। •

३

क्या हम ज्ञान की तिथि निर्धारित कर सकते हैं?

लन्दन में प्रात:कालीन भ्रमण के समय एक अंग्रेज छात्र तथा श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के बीच हुई बातचीत।

श्रील प्रभुपाद : कृष्णभावनामृत का सन्देश आध्यात्मिक जगत से आता है। यह इस भौतिक जगत का नहीं है। इसीलिए कभी-कभी लोग इसका गलत अर्थ लगा सकते हैं। अत: हमें इसकी सही ढंग से व्याख्या करनी पड़ती है। वे इतना भी नहीं समझ पाते कि आत्मा क्या है। बड़े-बड़े विज्ञानियों, बड़े-बड़े दार्शनिकों को आत्मा तथा आध्यात्मिक जगत की कोई जानकारी नहीं है। इसीलिए कभी-कभी इन्हें समझने में उनको बहुत कठिनाई होती है।

अतिथि : इधर मैं वेदों की तिथि-निर्धारण पर कुछ शोध-कार्य कर रहा हूँ। आप जानते हैं कि कुछ पुरातत्वविदों का मत है कि हड़प्पा तथा मोहनजोदड़ो में हुई खुदाई से प्राप्त प्रमाण यह दर्शाते हैं कि वास्तव में वेदों की तिथियाँ पहले मानी तिथियों से काफी बाद की हैं। इससे वेदों की प्रामाणिकता पर एक सीमा तक

अवरोह प्रतीत होगा, क्योंकि तब वे विश्व के सर्वाधिक प्राचीन धार्मिक शास्त्र नहीं लगेंगे।

श्रील प्रभुपाद : वेद का अर्थ 'धर्म' नहीं है। वेद का अर्थ 'ज्ञान' है। इसलिए यदि आप ज्ञान के इतिहास का पता लगा सकें, तो आप वेद की उत्पत्ति-तिथि का पता लगा सकते हैं। क्या आप यह पता लगा सकते हैं कि ज्ञान कब शुरू हुआ? क्या आप इसका पता लगा सकते हैं?

अतिथि : मैं नहीं समझता कि हम ऐसा कर सकते हैं।

श्रील प्रभुपाद : तो आप वेदों के इतिहास का पता कैसे लगा सकोगे? वेदों का अर्थ है ज्ञान। अतः सर्वप्रथम यह ज्ञात करो कि ज्ञान किस तिथि से शुरू हुआ। तब वेदों के काल का पता लगाओ।

वेदों का इतिहास इस भौतिक जगत की सृष्टि की तिथि से शुरू हुआ। कोई व्यक्ति सृष्टि की तिथि नहीं बता सकता। सृष्टि का शुभारम्भ ब्रह्मा के जन्म से होता है और आप ब्रह्मा के एक दिन की माप की गणना तक नहीं कर सकते। ब्रह्मा की रात्रि के समय ब्रह्माण्ड का कुछ हद तक प्रलय हो जाता है और ब्रह्मा के दिन के समय पुनः सृष्टि हो जाती है। प्रलय दो तरह का होता है। एक तो ब्रह्मा की रात्रि के समय होता है और एक अन्तिम प्रलय होता है, जिससे सम्पूर्ण प्रकट सृष्टि का संहार होता है। किन्तु ये क्षुद्र मानव वेदों की तिथि के विषय में अनुमान लगाने में जुटे हैं। यह अत्यन्त हास्यास्पद है।

ऐसे अनेक सूक्ष्म जीवाणु होते हैं, जो शाम को जन्मते हैं और

प्रातःकाल होते होते मर जाते हैं। उनकी पूरी आयु एक रात की ही होती है। हमारा जीवन भी उसी तरह है। आप कौन सा इतिहास लिख सकते हो? इसलिए हम वैदिक ज्ञान वैदिक प्रमाणों से ही पाते हैं।

मनुष्य को 'दादुर-दार्शनिक' नहीं होना चाहिये। क्या आप दादुर-दर्शन के विषय में जानते हो? दादुर महाशय (मेंढक) ने कभी 'अटलांटिक' महासागर नहीं देखा था, अतः जब किसी ने उसे बताया कि, "अरे, मैंने बहुत बड़ा जलसमूह देखा है।" तो श्री दादुर ने कहा, "क्या वह इस कुएँ से बड़ा है?"

अतिथि : हाँ, यह तो उसकी समझ से परे था।

श्रील प्रभुपाद : हाँ। उसी तरह ये विद्वान भी अपने-अपने कुओं में सड़ रहे दादुरों की तरह हैं। भला, ये वैदिक ज्ञान के बारे में सम्भवतः क्या समझ पाएँगे?

अतिथि : हाँ। मैं समझ रहा हूँ। विषयान्तर के रूप में, मैं सोचता हूँ कि क्या आप अनुभव करते हैं कि वेद इसकी पुष्टि करते हैं कि असली जीवन यानी जीवन का जो शुद्धतम रूप है, वह प्रकृति के साथ-साथ जिया जाता है; उसके विपरीत होकर नहीं, जैसाकि हम अपने शहरी परिवेश में करते प्रतीत होते हैं।

श्रील प्रभुपाद : जी हाँ। असली जीवन का अर्थ यह है कि शारीरिक कार्यों को न्यूनतम किया जाय, जिससे समय बचाकर आध्यात्मिक ज्ञान में लगा जा सके। यही असली जीवन है। वर्तमान सभ्यता, जो कि देहात्मबोध पर आधारित है, पशुजीवन है। यह सभ्य जीवन नहीं है। *अथातो ब्रह्मजिज्ञासा*—सभ्य जीवन

तब शुरू होता है, जब मनुष्य इतना प्रगत बन जाता है कि वह आत्मा के विषय में जिज्ञासा करने लगता है। किन्तु जब ऐसी जिज्ञासा नहीं होती, जब लोग यह नहीं पूछते कि आत्मा क्या है, तो वे कूकरों-सूकरों की तरह होते हैं। वैदिक जीवन सिखाता है कि मनुष्य, जहाँ तक सम्भव हो, शारीरिक उत्पातों से मुक्त बने। इसीलिए वैदिक शिक्षा ब्रह्मचर्य से शुरू होती है। समझे आप? किन्तु ये धूर्त अपने विषयी जीवन पर रोक नहीं लगा सकते। इनका दर्शन यह है कि अनियन्त्रित यौन-जीवन भोगते रहो और जब गर्भ ठहर जाय, तो भ्रूण की हत्या कर दो।

अतिथि : हाँ।

श्रील प्रभुपाद : यह उनका दुष्ट दर्शन है। उन्हें इसका कोई अनुमान नहीं है कि प्रशिक्षण के द्वारा मनुष्य यौन-जीवन को भुला सकता है। और यदि आप यौन-जीवन भूल जाते हैं, तो फिर गर्भपात का प्रश्न ही कहाँ रहा? किन्तु वे ऐसा नहीं कर सकते। इसीलिए कहा गया है *अदन्तगोभिर्विशतां तमिस्रं*—वे अनियन्त्रित इन्द्रिय-भोग के कारण क्रमशः पशु-जीवन के स्तर की ओर नीचे जा रहे हैं।

जो व्यक्ति गर्भ में शिशु की हत्या करके गर्भपात कराने का काम करता है, उसे अगले जन्म में गर्भ में स्थापित किया जाएगा और कोई व्यक्ति उसका वध करेगा। उसने जितने ही शिशुओं की हत्या की रहती है, उसे उतने ही गर्भों में रहना पड़ता है और उतनी बार उसका वध किया जाता है। इस तरह सैकड़ों वर्षों तक उसके लिए सूर्यप्रकाश को देख पाना असम्भव होगा। वह गर्भ

में ही रहेगा और उसकी हत्या की जाएगी। लोग प्रकृति के नियमों को नहीं जानते। मनुष्य राज्य नियमों के उल्लंघन की तरह प्रकृति के नियमों का उल्लंघन नहीं कर सकता। मान लो कि आप किसी का वध कर देते हो, तो चालबाजी से आप बच सकते हो। लेकिन आप प्रकृति के नियम से नहीं बच सकते। आपने जितनी बार वध किया है, उतनी ही बार गर्भ में आपकी हत्या की जाएगी। यही प्रकृति का नियम है।

अतिथि : अभी पिछले ही सप्ताह मैं एक नर्स से बातें कर रहा था, जो लन्दन के एक मुख्य अस्पताल में गर्भपात-विभाग में काम करती है। यह बहुत ही बीभत्स होता है। इनमें से कुछ भ्रूण इतने अधिक विकसित हो चुके होते हैं कि उनमें जीवन होने की प्रबल सम्भावना रहती है।

श्रील प्रभुपाद : सम्भावना का प्रश्न ही नहीं है। जीवन तो सम्भोग काल से ही शुरू हो जाता है। जीव अति लघु होता है। वह अपने कर्म के अनुसार, प्रकृति के नियम द्वारा पिता के वीर्य में प्रेषित किया जाता है और माता के गर्भ में प्रविष्ट करा दिया जाता है। पुरुष तथा स्त्री के वीर्य तथा रज पायस बनाकर मटर के बराबर शरीर का निर्माण करते हैं। तत्पश्चात् वह मटर जैसा शरीर धीरे-धीरे बढ़ता है। वैदिक वाङ्मय में इसका वर्णन हुआ है। पहली अवस्था में नौ छिद्र प्रकट होते हैं—ये हैं कान, आँख, नथुने, मुँह, जनन अंग तथा गुदा।

तत्पश्चात् धीरे-धीरे इन्द्रियाँ विकास होती हैं, साढ़े छह

महीनों में सब कुछ पूर्ण हो जाता है और जीव की चेतना वापस

आ जाती है। शरीर बनने के पूर्व जीव अचेत रहता है मानो मूर्छा में हो। तब वह स्वप्न देखता है और फिर क्रमशः उसमें चेतना आती है। उस समय वह बाहर आने के लिए अत्यधिक अनिच्छुक रहता है, किन्तु प्रकृति उसे धक्का देती है और वह बाहर आ जाता है। जन्म की यही विधि है।

यह वैदिक ज्ञान है। वैदिक वाङ्मय में सारी चीजें सुचारु रूप से वर्णित मिलेंगी। इसलिए वेद इतिहास के अधीन कैसे हो सकते हैं? किन्तु कठिनाई यह है कि हम जिन बातों के विषय में बोल रहे हैं, वे आध्यात्मिक हैं। इसलिए कभी-कभी निपट भौतिकतावादियों के लिए यह समझ पाना कठिन होता है। वे इतने मन्दबुद्धि होते हैं कि वे समझ ही नहीं पाते। •

४

मस्तिष्कविहीन समाज

यह वार्तालाप मई १९७४ में जेनेवा में श्रील प्रभुपाद एवं अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघटन के चार्ल्स हेन्निस के मध्य हुआ।

श्रीमान् हेन्निस : मैं अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघटन के लिए कार्य करता हूँ, जो कि संयुक्त राष्ट्र परिवार का एक अंग है। हम विश्वभर के लगभग समस्त राष्ट्रों में सारे श्रमिकों की संरक्षण तथा कल्याण कार्यों से जुड़े हुए हैं।

श्रील प्रभुपाद : वैदिक वाङ्मय में चार सामाजिक श्रेणियों का वर्णन हुआ है—बुद्धिमान, प्रशासक, व्यापारी, श्रमिक। सामाजिक शरीर में श्रमिक पाँव का कार्य करते हैं, किन्तु पाँवों को मस्तिष्क से नियन्त्रित होना चाहिए। इस सामाजिक शरीर का मस्तिष्क बुद्धिमान वर्ग है। संयुक्त राष्ट्र सामाजिक शरीर के पाँवों का ही ख्याल करता है, किन्तु वह मस्तिष्क यानी बुद्धिमान वर्ग के लिए क्या कर रहा है?

श्रीमान् हेन्निस : हम इस बात का ध्यान रखते हैं कि समाज के आर्थिक लाभों में श्रमिकों को समुचित भाग मिले।

श्रील प्रभुपाद : किन्तु मेरा कहना यह है कि यदि आप समाज के मस्तिष्क की उपेक्षा करते हैं, तो पाँवों पर ध्यान देने के

बावजूद कार्य सुचारु रूप से नहीं चलेगा, क्योंकि मस्तिष्क व्यवस्थित नहीं होगा।

श्रीमान् हेन्निस : लेकिन क्या आप नहीं सोचते कि यह भी समाज का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है? हमारा लक्ष्य विश्व के तमाम श्रमिकों के भाग्य को सुधारना है।

श्रील प्रभुपाद : अमरीका में तो श्रमिकों को काफी अच्छी मजदूरी दी जाती है, किन्तु क्योंकि उनका निर्देशन मस्तिष्क द्वारा अर्थात् बुद्धिमान वर्ग द्वारा नहीं होता, इसलिए वे सारा धन शराब पीने में खर्च कर देते हैं।

श्रीमान् हेन्निस : यह तथ्य कि अच्छी वस्तु का दुरुपयोग होता है, वह उस वस्तु को बुरा नहीं बनाता।

श्रील प्रभुपाद : बात यह है कि हर व्यक्ति को मस्तिष्क के द्वारा निर्देशित होना चाहिए। समाज को संघटित करने का यही एकमात्र साधन है। बिना बुद्धि के, गधे की तरह कठिन श्रम करने से क्या लाभ?

श्रीमान् हेन्निस : आप किसी मनुष्य को मस्तिष्क का उपयोग करने के लिए बाध्य तो नहीं कर सकते?

श्रील प्रभुपाद : इसीलिए संयुक्त राष्ट्र को चाहिए कि आदर्श बुद्धिमान मनुष्यों की श्रेणी का समर्थन करे, जो समाज के मस्तिष्क की तरह कार्य करें और अन्यों का मार्गदर्शन करें, जिससे हर व्यक्ति सुखी बन सके।

श्रीमान् हेन्निस : आप पाएँगे कि विश्वभर में हर समाज में एक पुरोहित वर्ग यानी दार्शनिक नेताओं का वर्ग होता है।

श्रील प्रभुपाद : पुरोहित यानी पादरी वर्ग! बाइबल कहती है, "तू वध नहीं करेगा।" किन्तु पादरियों ने इसे अपनी सनकों के अनुकूल बनाने के लिए इसमें संशोधन कर लिया है। उन्होंने निर्दोष पशुओं के वध हेतु हजारों की संख्या में बड़े-बड़े कसाईघर खोलने की अनुमति देकर वध करने को स्वीकृति प्रदान की है। भला ऐसे तथाकथित पादरी किस तरह मार्गदर्शन कर सकते हैं? मैंने इसके बारे में अनेक ईसाई महानुभावों तथा पादरियों से पूछा है कि आपकी बाइबल शिक्षा देती है "तू वध नहीं करेगा।" तो फिर आप इस आदेश का उल्लंघन क्यों करते हैं? किन्तु वे अस्पष्ट उत्तर देते हैं। उन्होंने लोगों को यह भी शिक्षा नहीं दी है कि पापमय क्या है। इसका अर्थ है समाज में मस्तिष्क का अभाव।

श्रीमान् हेन्निस : मेरा संघटन लोगों के मस्तिष्क से सीधे सम्बद्ध नहीं है।

श्रील प्रभुपाद : भले ही आपका संघटन इससे प्रत्यक्ष जुड़ा हुआ न हो, किन्तु यदि मानव समाज मस्तिष्कविहीन हो तो फिर आप कितने ही संगठन क्यों न बनाएँ, लोग कभी भी सुखी नहीं हो पाएँगे। यदि समाज का बुद्धिमान वर्ग लोगों को यह शिक्षा नहीं देता कि पुण्य तथा पाप कर्मों में कैसे अन्तर किया जाय, तो वे लोग पशुवत् हैं।

श्रीमान् हेन्निस : वस्तुतः जब आप पापकर्मों तथा पुण्यकर्मों में अन्तर की बात करते हैं तो...

श्रील प्रभुपाद : उन्हें अब ऐसा अन्तर दिखता ही नहीं। किन्तु

हमारे कृष्णभावनामृत संघ में मैं अपने अनुयायीओं को प्रारम्भ से ही पापकर्मों से बचने की शिक्षा देता हूँ। उन्हें मांसाहार, द्यूतक्रीड़ा, अवैध यौन तथा नशे का पूरी तरह परित्याग करना होता है। अब आप उनके चरित्र तथा व्यवहार की तुलना अन्य किसी से कीजिए। ईसाई पादरी तक भी आश्चर्यचकित हो जाते हैं। वे कहते हैं, "ये लड़के तो हमारे लड़के हैं। क्या कारण है कि वे आपके आन्दोलन में सम्मिलित होने के पूर्व कभी भी गिरजाघर नहीं आये थे, किन्तु अब वे ईश्वर के पीछे पागल हैं?" सड़कों पर लोग पूछते हैं, "क्या आप अमरीकी हैं?"

आपने देखा, हर वस्तु को समुचित मार्गदर्शन द्वारा सुधारा जा सकता है। किन्तु यदि समाज में मस्तिष्क न हो, तो आप कितने ही संघटन क्यों न बना लें, लोग कष्ट भोगते रहेंगे। यह प्रकृति का नियम है कि यदि लोग पापी हैं, तो उन्हें कष्ट भोगना होगा।

श्रीमान् हेन्निस : मैं नहीं सोचता कि लोगों को शिक्षा देने के लिए किसी अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की अपेक्षा की जाय...।

श्रील प्रभुपाद : क्यों नहीं? इसे अन्तर्राष्ट्रीय होना चाहिए—प्रत्येक को। संयुक्त राष्ट्र-संघ अन्तर्राष्ट्रीय कार्य के लिए है; इसलिए हमारा प्रस्ताव यह है कि संयुक्त राष्ट्र-संघ उच्चकोटि के बुद्धिमान लोगों का एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन कायम करे, जो समाज के मस्तिष्क का कार्य कर सके। तभी लोग सुखी हो सकेंगे। किन्तु यदि आप बिना निर्देशन के, बिना मस्तिष्क के, हाथ-पाँव चलाते रहना चाहते हैं, तो आप कभी सफल नहीं होंगे।

श्रीमान् हेन्निस : आप जानते हैं कि मैं अपने को मानव मात्र का

सेवक मानता हूँ, जिसका उद्देश्य लोगों को, एक दूसरे को तथा विश्व को और अच्छी तरह समझने में सहायता करना है। अब मैं श्रमिकों के शिक्षण कार्यक्रमों को संगठित करने के प्रयास में हूँ...

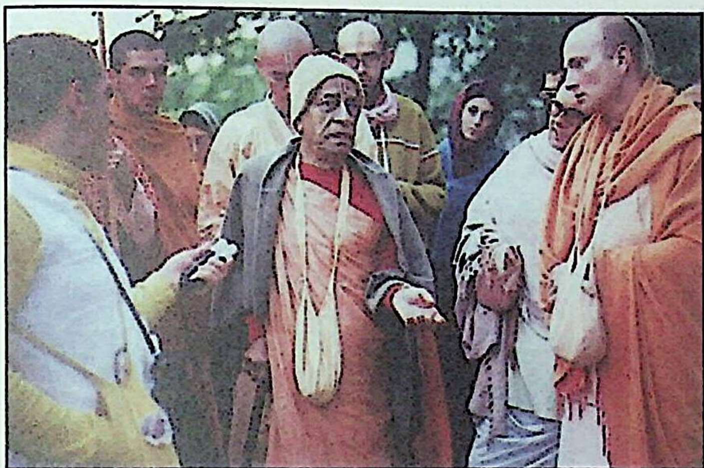
श्रील प्रभुपाद : लेकिन आप कृपया समझने की कोशिश करें। मैं समाज के मस्तिष्क पर बल दे रहा हूँ। यदि आदर्श श्रेणी के मनुष्य न हों, यदि मस्तिष्क सुचारु न हो, तो आप चाहे कितनी ही शिक्षा क्यों न दें या कितने ही संगठन क्यों न बना लें, वे सब असफल होंगे। संयुक्त राष्ट्र-संघ समस्त मानव समाज के हेतु एक संगठन है, किन्तु उसके पास कोई ऐसा विभाग नहीं है, जिसे वास्तव में मस्तिष्क संघटन कहा जा सके।

श्रीमान् हेन्निस : यह तो सच है।

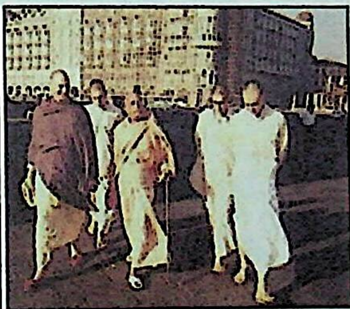
श्रील प्रभुपाद : यही मुझे कहना है।

श्रीमान् हेन्निस : हम अपने सदस्य-राज्यों के कर्णधारों के सेवक मात्र हैं। यदि श्रीमान् निक्सन तथा अन्य सभी राज्याध्यक्षों के मस्तिष्क नहीं हैं, तो संयुक्त राष्ट्र-संघ उन्हें मस्तिष्क प्रदान करने के लिए कुछ भी नहीं कर सकता।

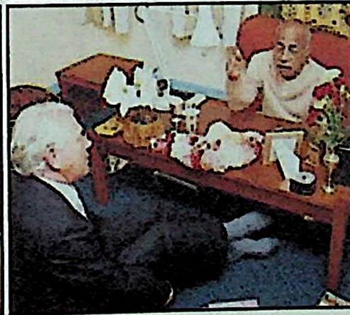
श्रील प्रभुपाद : तब तो आपका यह विशाल संगठन शव को सजाने जैसा है। मस्तिष्कविहीन शरीर मृत होता है। आप शव को जी भर कर अलंकृत कर सकते हैं, किन्तु इससे क्या लाभ? यदि समाज में लोगों को यह शिक्षा देने के लिए मस्तिष्क-वर्ग न हो कि क्या सही है और क्या गलत, तो सामाजिक शरीर मृत है, सिररहित है। तब आप जो भी कार्य करेंगे, वह मृत शरीर के व्यर्थ अलंकरण जैसा होगा। •



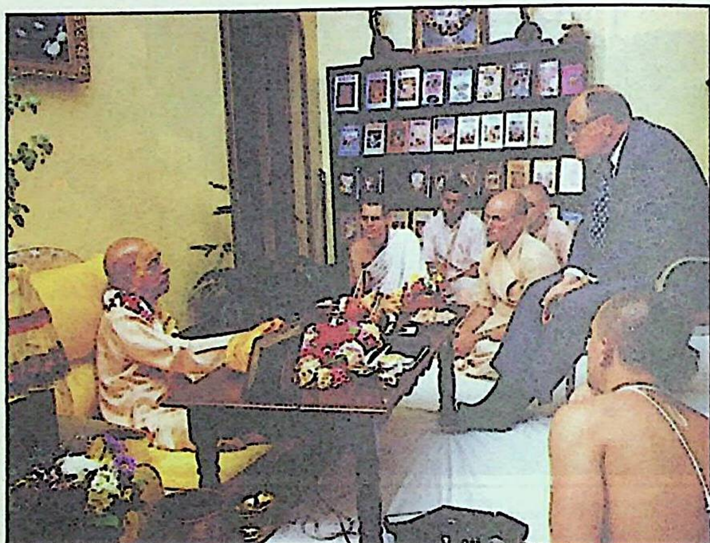


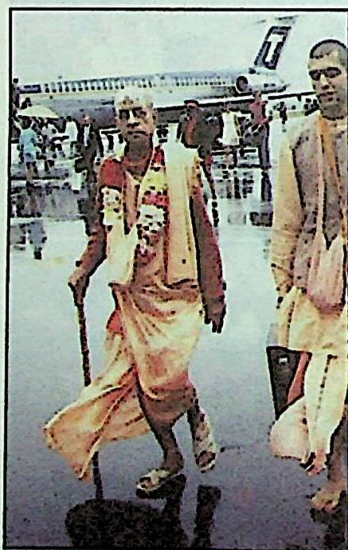


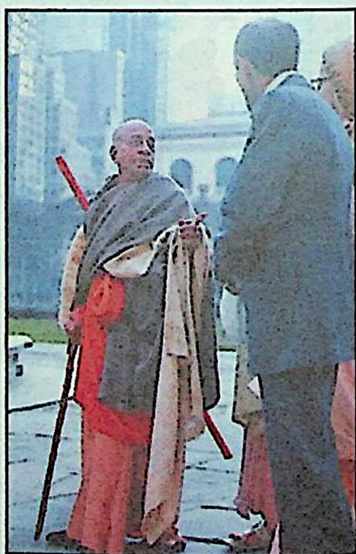




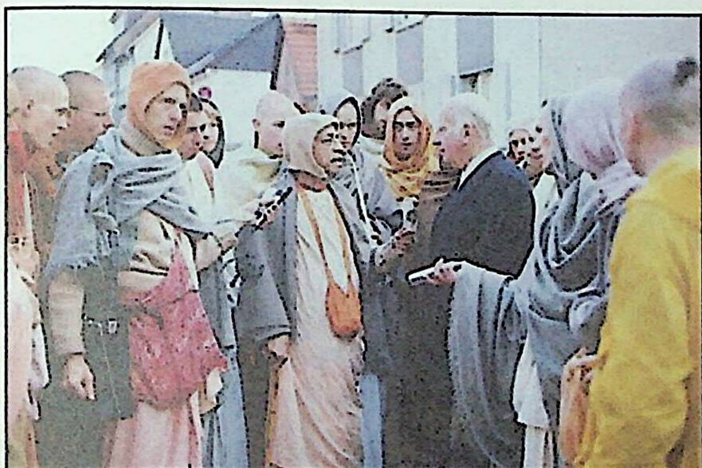
हमारा विज्ञान परिपूर्ण है क्योंकि हम कृष्ण से ज्ञान ग्रहण करते हैं, जो परिपूर्ण स्रोत हैं।



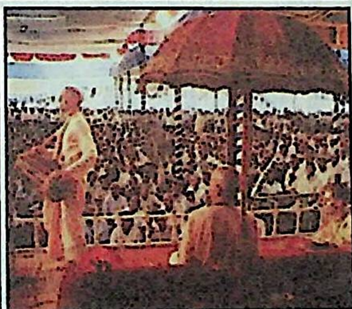


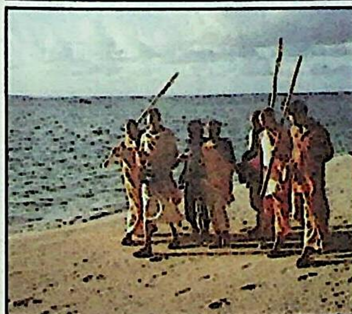


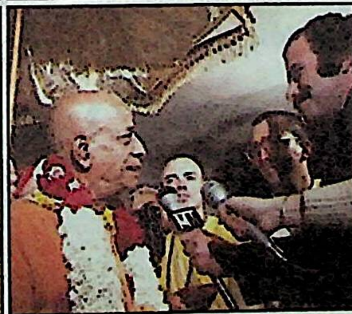
आत्मा को हम अपनी स्थूल इन्द्रियों से नहीं देख सकते, परंतु हम इसकी अनुभूति कर सकते हैं। चेतना की अनुभूति होना, यह आत्मा का लक्षण है।



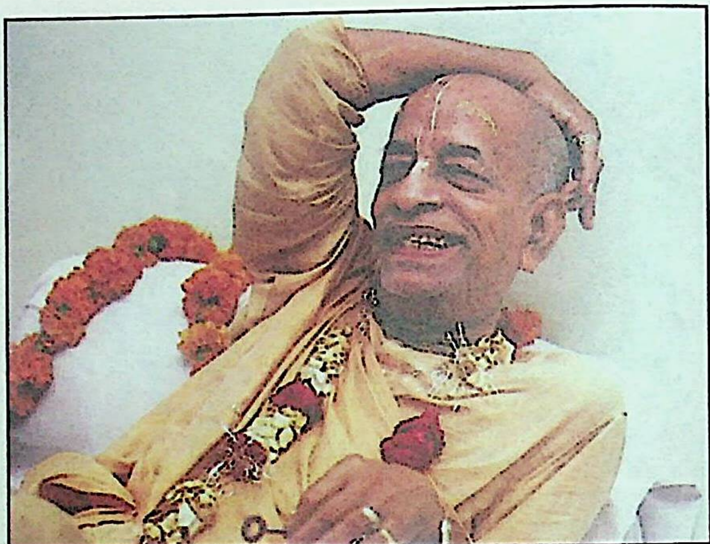








आप गाय से दूध लेते हैं परंतु जब वह बूढ़ी हो जाती है और दूध नहीं दे पाती तब आप उसका गला काट देते हैं। क्या यह मानवोचित व्यवहार है ?



ये आहार, निद्रा, भय और मैथुन पशु भी करते हैं और आप भी करते हैं। परंतु मानव शरीर की श्रेष्ठता यह है कि आप भगवान् का साक्षात्कार कर सकते हैं।

५

सादा जीवन : उच्च विचार

यह वार्तालाप जून १९७६ में पश्चिमी वर्जीनिया, नव वृन्दावन में श्रील प्रभुपाद तथा उनके कतिपय शिष्यों के बीच हुआ था।

श्रील प्रभुपाद : पाश्चात्य सभ्यता गन्दी सभ्यता है—यह जीवन की आवश्यकताओं को कृत्रिम रूप से बढ़ाने वाली है। उदाहरणार्थ, बिजली के प्रकाश को लें। बिजली के प्रकाश के लिए एक जेनरेटर चाहिए और जेनरेटर चलाने के लिए पेट्रोलियम चाहिए। ज्योंही पेट्रोलियम की आपूर्ति ठप हो जाती है, सब कुछ ठप हो जायेगा। किन्तु पेट्रोलियम पाने के लिए आपको कष्टप्रद खोज करनी होती है और पृथ्वी में गहराई में तथा कभी-कभी समुद्र के बीचोंबीच गहरी खुदाई करनी पड़ती है। यह *उग्र-कर्म* अर्थात् भयावह कर्म है। यही कार्य कुछ अरंड वृक्ष उगाकर, उसके बीजों को पेर कर तेल निकाल कर तथा तेल को बत्ती से युक्त दीपक जलाकर सम्पन्न किया जा सकता है। हम मानते हैं कि बिजली के द्वारा आपने प्रकाशपूर्ति-प्रणाली सुधार ली है, किन्तु अरेंडी के तेल के दीये से बिजली के बल्ब तक प्रगति करने में आपको अति कठोर श्रम करना होता है। आपको समुद्र के बीचोंबीच जाकर बेधन करके पेट्रोलियम निकालना

होता है और इस तरह जीवन का असली लक्ष्य छूट जाता है। आप बहुत ही शोचनीय स्थिति में हैं—विभिन्न योनियों में निरन्तर मरते तथा जन्म लेते रहते हैं। इस जन्म-मृत्यु के चक्कर से अपने को कैसे मुक्त किया जाय—यही आपकी असल समस्या है और इस समस्या का हल मानव जीवन में ही होना होता है। आपके पास आत्म-साक्षात्कार पाने के लिए उन्नत बुद्धि है, किन्तु इस उन्नत बुद्धि का उपयोग आत्म-साक्षात्कार के लिए न करके आप इसका प्रयोग अरेंडी के तेल के दीपक को बिजली के लैम्प में बदलने के लिए कर रहे हैं। इतना ही है।

शिष्य : लोग कहेंगे कि आपका सुझाव अव्यावहारिक है। यही नहीं, बिजली प्रकाश उत्पन्न करने के अलावा और भी अनेक कार्य करती है। हमारे अधिकांश आधुनिक सुख-साधन न्यूनाधिक बिजली पर ही निर्भर हैं।

श्रील प्रभुपाद : हो सकता है कि आप इस जीवन में बहुत ही आराम से रह रहे हों, किन्तु अगले जीवन में आप कुत्ता बन सकते हैं।

शिष्य : लोग इस पर विश्वास नहीं करते।

श्रील प्रभुपाद : वे विश्वास करें या न करें, यह एक तथ्य है। उदाहरणार्थ, एक बालक यह नहीं जानता कि वह बढ़कर युवक बनने जा रहा है, किन्तु उसके माता-पिता जानते हैं। यदि बालक यह कहे कि "नहीं, मैं युवक नहीं बनने वाला हूँ," तो यह बचकानी बात होगी। माता-पिता जानते हैं कि बालक बढ़कर युवक बनेगा और उन्हें चाहिए कि वे उसे ऐसी शिक्षा दिलाएँ,

जिससे वह जीवन में सुस्थित हो सके। यही अभिभावक का कर्तव्य है।

इसी तरह जब हम आत्मा के देहान्तरण की बात चलाते हैं, तो कोई धूर्त यह कह सकता है, "मैं इस पर विश्वास नहीं करता," किन्तु तो भी यह तथ्य है। कोई धूर्त, एक पागल यह कह सकता है कि देहान्तरण तथ्य नहीं है, किन्तु असलियत यही है कि उसे इस जीवन में अपने कर्म के गुणानुसार दूसरा शरीर अपनाना पड़ेगा—*कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु।*

शिष्य : यदि कोई यह कहे कि, "अरंड के वृक्ष उगाना अति कठिन है और खेती करना भी सामान्यतया कठिन है। किसी फैक्टरी में आठ घंटे के लिए जाना और रुपये कमा कर घर आना तथा आनन्द करना अधिक सरल है।"

श्रील प्रभुपाद : आप आनन्द उठा सकते हैं, किन्तु आनन्द उठाने से आप जीवन के असली लक्ष्य को भूल जाते हैं। क्या यह बुद्धिमानी है? आपको यह मानव शरीर अपना अगला जीवन सुधारने के लिए मिला है। मान लीजिये कि अगले जीवन में आप कुत्ता बनते हैं। क्या यह सफलता है? आपको कृष्णभावनामृत का विज्ञान जानना चाहिए। तब आप कुत्ता बनने के बजाय ईश्वर जैसे हो जाएँगे।

शिष्य : आपने एक बार लन्दन में जान लेनन इस्टेट (जागीर) में यह कहा था कि आज की अत्यधिक परेशानी का कारण ट्रैक्टर है। इसने नौजवानों से सारा कार्य छीन लिया है और काम करने के लिए उन्हें शहर जाने के लिए बाध्य कर दिया है, जहाँ

वे इन्द्रियतृप्ति में जुट जाते हैं। मैंने देखा है कि देहात का जीवन अधिक सरल तथा अधिक शान्त है। वहाँ पर आध्यात्मिक जीवन के विषय में सोचना अधिक सरल है।

श्रील प्रभुपाद : हाँ। देहात कम विक्षुब्धकारी तथा मस्तिष्क पर कम बोझ डालने वाला है। अपने भोजन के लिए थोड़ा काम कर लीजिये और शेष समय कृष्णभावनामृत में लगाइये। यही आदर्श जीवन है।

[*श्रील प्रभुपाद एक फूल उठा लेते हैं।*] इस फूल के सूक्ष्म तन्तुओं को देखिये। क्या कोई इतने सूक्ष्म तन्तु किसी फैक्टरी में तैयार कर सकता है? और इसका रंग भी कितना चटक है! यदि आप केवल एक फूल का ही अध्ययन कर लें, तो आप कृष्णभावनाभावित हो जाएँ। एक यन्त्र है, जिसे आप 'प्रकृति' कहते हैं और इस यन्त्र से सारी वस्तुएँ बन रही हैं। किन्तु इस यन्त्र को किसने बनाया है?

शिष्य : आपने लन्दन में कहा था कि लोग यह नहीं जानते कि फूलों को कृष्ण ने सोच-समझकर ही रंग प्रदान किया है।

श्रील प्रभुपाद : हाँ। क्या आप यह सोचते हैं कि बिना कलाकार के फूल इतना सुन्दर बन सकता है? यह मूखर्ता होगी। प्रकृति क्या है? यह कृष्ण का यन्त्र है। कृष्ण के यन्त्र द्वारा ही सब कुछ हो रहा है।

अतः आप नववृन्दावन में अपने रहन-सहन की रीति को सुधारें। खुले स्थान में रहें, अपना अन्न, अपने लिए दूध स्वयं उत्पन्न करें, समय बचा कर हरे कृष्ण का कीर्तन करें। सादा

जीवन, उच्च विचार—यही आदर्श जीवन है। किन्तु यदि आप अपने जीवन की कृत्रिम आवश्यकताएँ—तथाकथित सुख-साधन बढ़ा लें और कृष्णभावनामृत के असली कार्य को भूल जाएँ, तो यह आत्मघातक होगा। हम इस आत्मघाती नीति को रोकना चाहते हैं। वस्तुतः हम इस पर बल नहीं देते कि लोग प्रौद्योगिकी की आधुनिक प्रगति को रोक दें। हम तो श्री चैतन्य महाप्रभु* द्वारा प्रदत्त सीधा सादा सूत्र प्रस्तुत करते हैं कि हरे कृष्ण का कीर्तन करें। आप अपनी प्रौद्योगिक फैक्टरी में भी कीर्तन कर सकते हैं। इसमें क्या कठिनाई है? आप अपने यन्त्र का बटन दबाते रहें और साथ ही हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे। हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे॥ का कीर्तन करते रहें।

शिष्य : और यदि लोग कीर्तन करने लगेंगे, तो वे क्रमशः प्रौद्योगिकी का परित्याग कर देंगे?

श्रील प्रभुपाद : निस्सन्देह।

शिष्य : तब तो आप उनके विनाश का बीज बो रहे हैं।

श्रील प्रभुपाद : नहीं, विनाश नहीं प्रत्युत निर्माण का। जन्म-मृत्यु की पुनरावृत्ति, शरीरों का निरन्तर परिवर्तन—यह विनाश है। किन्तु हमारी विधि से आप सदा जीवित रहते हैं—*त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति* (*भगवद्गीता* ४.९)—आपको दूसरा भौतिक शरीर नहीं मिलता। किन्तु कृष्णभावनामृत के बिना—*तथा देहान्तर*

*श्री चैतन्य महाप्रभु स्वयं भगवान् कृष्ण हैं, जो स्वयं के भक्त की भूमिका निभा रहे हैं। वे पन्द्रहवीं शताब्दि के उत्तरार्ध में पवित्र भगवन्नाम के माध्यम से भगवत्प्रेम का वितरण करने के लिए प्रकट हुए।

प्राप्तिः (*भगवद्गीता* २.१३)—आपको दूसरा शरीर धारण करना पड़ता है, जिसका अर्थ है कष्ट। तो फिर क्या अच्छा है ? एक के बाद दूसरा शरीर धारण करना या आगे कोई शरीर धारण न करना ? यदि हम इस शरीर के साथ अपने कष्ट को समाप्त कर दें तो यह बुद्धिमानी है, किन्तु यदि हम आगे और कष्ट उठाने के लिए दूसरा शरीर उत्पन्न करें, तो यह नादानी है। किन्तु जब तक आप कृष्ण को समझ नहीं लेते, तब तक आपको दूसरा शरीर अपनाना ही पड़ेगा। इसका कोई विकल्प नहीं है। •

६

आत्मा का वैज्ञानिक प्रमाण

यह वार्तालाप श्रील प्रभुपाद तथा एक भारतीय डाक्टर के मध्य सितम्बर १९७३ में लन्दन के हरे कृष्ण केन्द्र में हुआ था।

डाक्टर : क्या आप वैज्ञानिक रीति से सिद्ध कर सकते हैं कि आत्मा का अस्तित्व है? मेरा कहने का आशय यह है कि क्या यह केवल विश्वास की बात है या...

श्रील प्रभुपाद : नहीं, यह वैज्ञानिक तथ्य है। हमारा विज्ञान पूर्ण है, क्योंकि ज्ञान हमें पूर्ण स्रोत अर्थात् कृष्ण से प्राप्त होता है। और तथाकथित आधुनिक विज्ञान अपूर्ण है, क्योंकि विज्ञानी अपना ज्ञान अपूर्ण स्रोतों से प्राप्त करता है। आप कितने ही बड़े विज्ञानी क्यों न हों, आपको यह स्वीकार करना होगा कि आपकी इन्द्रियाँ अपूर्ण हैं।

डाक्टर : हाँ।

श्रील प्रभुपाद : अतः अपूर्ण इन्द्रियों से केवल अपूर्ण ज्ञान ही प्राप्त हो सकता है। आप जिसे वैज्ञानिक ज्ञान कहते हैं वह फिजूल है, क्योंकि जिन लोगों ने यह ज्ञान उत्पन्न किया है, वे अपूर्ण हैं। भला, अपूर्ण व्यक्ति से आप पूर्ण ज्ञान की आशा कैसे कर सकते हैं?

डाक्टर : यह तो मात्रा की बात है।

श्रील प्रभुपाद : मैं यह कहना चाहता हूँ कि यदि आप पूर्ण ज्ञान नहीं दे पाते, तो आपसे ज्ञान प्राप्त करने से क्या लाभ?

डाक्टर : हाँ। मैं इस दृष्टिकोण को स्वीकार करता हूँ। किन्तु आप यह कैसे सिद्ध करते हैं कि आत्मा का अस्तित्व है?

श्रील प्रभुपाद : आप पूर्ण स्रोत कृष्ण से या कृष्ण के प्रतिनिधि से, जो कृष्ण के शब्दों को ही दुहराता है, जानकारी लीजिये। यही हमारी प्रमाण की विधि है। *एवं परम्पराप्राप्तम्*—"दिव्य ज्ञान को परम्परा से ही प्राप्त करना चाहिए।" हम किसी धूर्त से ज्ञान नहीं लेते; ज्ञान को हम कृष्ण अर्थात् परम पुरुष से प्राप्त करते हैं। भले ही मैं धूर्त होऊँ, किन्तु पूर्ण स्रोत से ज्ञान प्राप्त करने तथा उसको ही दोहराने के कारण मैं जो भी कहता हूँ वह पूर्ण है।

एक शिशु अज्ञानी हो सकता है, किन्तु जब वह कहता है कि "पिताजी! यह मेज है," तो उसके शब्द पूर्ण (सही) होते हैं, क्योंकि उसने सीख रखा है कि अमुक वस्तु मेज कहलाती है। इसी तरह यदि आप किसी पूर्ण व्यक्ति से सुनते हैं और उस पर विश्वास करते हैं, तो आपका ज्ञान पूर्ण है। कृष्ण कहते हैं *तथा देहान्तरप्राप्तिः*—"मृत्यु के पश्चात् आत्मा दूसरे भौतिक शरीर में प्रवेश करता है।" हम इसे स्वीकार करते हैं। हमें तथाकथित वैज्ञानिक से प्रमाण नहीं चाहिए, क्योंकि वह अपूर्ण होता है।

डाक्टर : अतः विश्वास का प्रश्न पहले उठता है।

श्रील प्रभुपाद : यह विश्वास नहीं, तथ्य है।

डाक्टर : ठीक, किन्तु आप उस तथ्य को किस तरह प्रमाणित

करते हैं ?

श्रील प्रभुपाद : चूँकि कृष्ण कहते हैं, अतः यही प्रमाण है।

डाक्टर : (बड़े ही व्यंग्य से) "इसे कृष्ण ने कहा है।" किन्तु...

श्रील प्रभुपाद : यह हमारा वैदिक प्रमाण है। जब हम कुछ कहते हैं, तो हम तुरन्त ही उसके समर्थन में वैदिक वाङ्मय से उद्धरण देते हैं। प्रमाण की यही हमारी विधि है, जो कानूनी कचहरी की विधि के समान है। जब कोई वकील कचहरी में दलील देता है, तो उसे पूर्ववर्ती फैसलों से उद्धरण देने होते हैं। तभी उसकी दलील कानूनी प्रमाण के रूप में न्यायाधीश द्वारा स्वीकार की जाती है। इसी तरह जैसे ही हम कोई बात कहते हैं, तुरन्त ही हम उसके समर्थन में वैदिक वाङ्मय से उद्धरण देते हैं। आध्यात्मिक मामलों में प्रमाण की विधि यही है। अन्यथा शास्त्र किसलिए हैं ? यदि वे मात्र मनोकल्पनाएँ होते, तो इन ग्रन्थों की आवश्यकता क्या थी ? निस्सन्देह, वैदिक वाङ्मय परम सत्य को भी तर्क के साथ प्रस्तुत करता है। उदाहरणार्थ, *भगवद्गीता* (२.१३) में कृष्ण कहते हैं—

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥

"आत्मा अपना शरीर बाल्यावस्था से युवावस्था में और युवावस्था से वृद्धावस्था में बदलता रहता है। इसी तरह आत्मा मृत्यु के समय अन्य शरीर में प्रवेश कर जाता है।" इसमें अतार्किक अभिव्यक्ति कहाँ है? यह वैज्ञानिक है। बुद्धिमान व्यक्ति के लिए यह वैज्ञानिक प्रमाण है। यदि इसमें पर भी यह

मन्दबुद्धि है, तो फिर किया ही क्या जा सकता है?

डाक्टर : लेकिन आत्मा तो अदृश्य है। आप कैसे आश्वस्त हो सकते हैं कि इसका अस्तित्व है?

श्रील प्रभुपाद : किसी वस्तु के अदृश्य रहने का अर्थ यह तो नहीं है कि हम यह नहीं जान सकते कि वह विद्यमान है। मन, बुद्धि तथा अहंकार का सूक्ष्म शरीर भी आप से अदृश्य है, किन्तु आप जानते हैं कि सूक्ष्म शरीर होता है। हमारे शरीर दो प्रकार के होते हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश से बना स्थूल शरीर तथा मन, बुद्धि एवं अहंकार का सूक्ष्म शरीर। आप पृथ्वी, जल इत्यादि के शरीर को देख सकते हैं, लेकिन क्या आप सूक्ष्म शरीर को देख सकते हैं? क्या आप मन को देख सकते हैं? क्या आप बुद्धि को देख सकते हैं? फिर भी हर व्यक्ति जानता है कि आपके मन है और मेरे भी मन है।

डाक्टर : आप जानते हैं कि ये तो अमूर्त हैं।

श्रील प्रभुपाद : नहीं, अमूर्त नहीं। ये सूक्ष्म पदार्थ हैं, इतना ही। इन्हें देख पाने के लिए आपके पास आँखें नहीं हैं।

डाक्टर : ठीक, सम्प्रति बुद्धि का अध्ययन करने के लिए हमारे पास तीन विधियाँ हैं...

श्रील प्रभुपाद : कुछ भी कहें, आप इतना तो स्वीकार करते हैं कि सूक्ष्म शरीर का अस्तित्व है, भले ही आप उसे देख नहीं पाते। यही मैं कहना चाहता हूँ। इसी तरह आत्मा का अस्तित्व है, भले ही आप उसे देख नहीं सकते। आत्मा सूक्ष्म तथा स्थूल शरीर से

प्रच्छन्न है। जिसे आप मृत्यु कहते हैं, वह स्थूल शरीर का

विलोपन है। सूक्ष्म शरीर बचा रहता है और वह आत्मा को ऐसे स्थान पर ले जाता है, जहाँ वह पुनः दूसरे भौतिक शरीर को जन्म दे सकता है, जो उसके मन की इच्छाओं को पूरा करने के लिए उपयुक्त हो।

अंग्रेज अतिथि : क्या आपका आशय यह है कि सूक्ष्म शरीर तथा आत्मा एक ही वस्तु है?

श्रील प्रभुपाद : नहीं। आत्मा सूक्ष्म शरीर से भिन्न है। आत्मा बुद्धि से अधिक सूक्ष्म है। ये बातें *भगवद्गीता* (३.४२) में बतलाई गई हैं—

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥

सर्वप्रथम हम मोटे तौर पर शरीर की इन्द्रियों से ही अवगत रहते हैं। जो लोग पशुतुल्य हैं, वे सोचते हैं कि इन्द्रियाँ ही सर्वेसर्वा हैं। वे यह नहीं समझ पाते कि इन्द्रियाँ मन के द्वारा नियन्त्रित होती हैं। यदि किसी का मन विकृत हो, तो उसकी इन्द्रियाँ कार्य नहीं कर सकतीं; वह मनुष्य पागल है। अतः इन्द्रियों का नियन्त्रक मन है। और मन के ऊपर बुद्धि है तथा बुद्धि के भी ऊपर आत्मा है।

जब हम मन तथा बुद्धि तक को नहीं देख सकते, तो फिर आत्मा को कैसे देख सकते हैं? लेकिन आत्मा का अस्तित्व है, उसका परिमाप है। यदि किसी को आत्मा की जानकारी नहीं है, तो वह पशुतुल्य है, क्योंकि वह अपनी पहचान अपने स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरों से करता है।

७

रात्रि तथा दिवा स्वप्न

यह वार्तालाप जनवरी १९७४ में लास एन्जलिस में श्रील प्रभुपाद एवं विश्वविद्यालय के एक छात्र के मध्य हुआ।

छात्र : आपने अपनी पुस्तकों में कहा है कि यह जगत स्वप्नवत् है।

श्रील प्रभुपाद : हाँ, यह स्वप्न है।

छात्र : यह स्वप्न किस तरह है?

श्रील प्रभुपाद : उदाहरणार्थ, गत रात्रि तुम्हें कोई सपना आया, किन्तु अब उसका कोई महत्त्व नहीं रह गया है। वह तो गया और पुनः जब आज रात में तुम सोओगे, तो उन सारी बातों को भूलकर दूसरा सपना देखोगे। जब आज रात तुम सपना देखोगे, तब तुम्हें याद नहीं रहेगा कि, "मेरा घर है, मेरी पत्नी है।" तुम सब कुछ भूल जाओगे, अतः यह सब सपना है।

छात्र : क्या यह सच है या सच नहीं है?

श्रील प्रभुपाद : यह किस तरह सच हो सकता है? रात में तुम भूल जाते हो। जब तुम सोते हो तो क्या तुम्हें याद रहता है कि तुम्हारे पत्नी है और तुम शय्या पर सो रहे हो? यदि तुम लगभग तीन हजार मील दूर चले जाओ और अपने सपने में सर्वथा भिन्न

वस्तु देखो, तो क्या तुम्हें याद रहता है कि तुम्हारे पास रहने के लिए जगह है?

छात्र : नहीं।

श्रील प्रभुपाद : अतः यह स्वप्न है। आज रात, जो तुम अब देख रहे हो, वह मात्र स्वप्न बन जाएगा, जिस तरह कल रात तुमने जो देखा था—अब तुम जानते हो कि यह केवल स्वप्न था। अतः दोनों स्वप्न हैं; तुम तो मात्र एक मुलाकाती हो। बस! तुम यह या वह स्वप्न देख रहे हो। आत्मा रूप तुम वास्तविक हो। किन्तु तुम्हारा भौतिक शरीर तथा जिस भौतिक परिवेश को तुम देख रहे हो, वह स्वप्न है।

छात्र : किन्तु मुझे लगता है कि यह अनुभव सच है और मेरा स्वप्न सच नहीं है। तो अन्तर क्या है...

श्रील प्रभुपाद : नहीं। यह सारा अनुभव असत्य है। यह सच कैसे हो सकता है? यदि यह सच होता, तो रात में तुम इसे कैसे भूल जाते? यदि यह सच होता तो तुम इसे कैसे भूल सकते थे? क्या रात में तुम यह सब स्मरण रखते हो?

छात्र : मुझे स्मरण नहीं रहता।

श्रील प्रभुपाद : तो यह सच कैसे हो सकता था? जिस तरह तुम गत रात देखे सपने को स्मरण नहीं रख सकते, अतः उसे "स्वप्न" कहते हो, उसी तरह यह अनुभव भी एक सपना है, क्योंकि तुम रात में इसे भूल जाते हो...

छात्र : किन्तु मुझे ऐसा लगता...

श्रील प्रभुपाद : यह दिवा स्वप्न है और वह रात्रि का स्वप्न है।

बात इतनी सी है। जब तुम रात में सपना देखते हो, तो तुम अनुभव करते हो कि यह असली है। हाँ। तुम सोचते हो कि यह असली है। यह स्वप्न है, किन्तु तुम चिल्लाते हो, "बाघ, बाघ, बाघ।" वह बाघ कहाँ है? किन्तु तुम उसे तथ्य के रूप में—बाघ के रूप में देख रहे हो। "मुझे बाघ मारे जा रहा है!" किन्तु वह बाघ है कहाँ? अथवा तुम यह सपना देखते हो कि तुम किसी सुन्दर लड़की को गले लगा रहे हो। वह सुन्दर लड़की कहाँ है? किन्तु वास्तव में ऐसा हो रहा है।

छात्र : क्या ऐसा हो रहा होता है?

श्रील प्रभुपाद : एक अर्थ में ऐसा हो रहा होता है, क्योंकि वीर्य स्खलित होता है। स्वप्नदोष। किन्तु वह लड़की कहाँ है? क्या यह स्वप्न नहीं है? किन्तु इसी तरह यह तथाकथित असली जीवन का अनुभव भी एक स्वप्न है। तुम्हें यह वास्तविक लगता है, किन्तु यह है स्वप्न। इसलिए यह *माया-सुखाय*—मायामय सुख कहलाता है। तुम्हारा रात्रिकालीन सुख तथा तुम्हारा दिन के समय का सुख एक ही वस्तु है। रात में तुम्हें स्वप्न आता है कि तुम एक सुन्दर लड़की का आलिंगन कर रहे हो, किन्तु ऐसी कोई वस्तु नहीं होती। इसी तरह दिन के समय भी, तुम जो भी "उन्नति" करते हो—वह भी ऐसी है। *माया-सुखाय*—तुम स्वप्न देखते हो कि "इस विधि से मैं सुखी बनूँगा" या "उस विधि से सुखी बनूँगा" किन्तु पूरी विधि मात्र स्वप्न है। तुम इस दिवास्वप्न को सचाई मान रहे हो, क्योंकि इसकी अवधि दीर्घ है। रात में

जब तुम स्वप्न देखते हो, तो अवधि केवल आधे घंटे की रहती

है। किन्तु यह दिवास्वप्न बारह घंटे या इससे भी अधिक चलता है। यही अन्तर है। यह बारह घंटे का स्वप्न है और वह आधे घंटे का—लेकिन वास्तव में दोनों ही स्वप्न हैं। चूँकि एक बारह घंटे का स्वप्न है, अतः तुम उसे असली मान लेते हो। इसे माया कहते हैं।

छात्र : माया!

श्रील प्रभुपाद : हाँ। तुम पशु तथा अपने बीच अन्तर करते हो, किन्तु यह भूल जाते हो कि जिस तरह पशु मरेगा, उसी तरह तुम भी मरोगे। तो फिर कहाँ है तुम्हारी उन्नति? क्या तुम सदा यहीं रहोगे? तुम भी मरोगे। तो फिर पशु से बढ़कर तुम्हारी उन्नति कहाँ है? इसका कथन वैदिक ग्रंथों में हुआ है। *आहार-निद्रा-भय-मैथुनम् च समानमेतत् पशुभिर्नराणाम्*—खाना, सोना, यौन-जीवन तथा आत्मरक्षा करना—ये पशु के भी कार्य हैं और तुम भी वही कार्य कर रहे हो। तो तुम पशु से किस तरह भिन्न हुए? तुम मर जाओगे, पशु भी मरेगा। किन्तु यदि तुम कहो, "मैं सौ वर्षों के बाद मरूँगा और यह चींटी एक घंटे बाद मरेगी।" तो इसका अर्थ यह नहीं है कि तुम वास्तविकता में हो। यह तो समय का प्रश्न है। या इस विशाल ब्रह्माण्ड को ही लो—यह विनष्ट हो जाएगा। जिस तरह तुम्हारा शरीर विनष्ट हो जाएगा, उसी तरह यह ब्रह्माण्ड भी विनष्ट होगा। संहार। विलय। प्रकृति का विधान है कि सारी वस्तुएँ विलीन हो जाएँगी।

अतएव यह स्वप्न है। बस, यह दीर्घ अवधि का स्वप्न है, इतना ही। और कुछ नहीं। लेकिन इस मनुष्य-शरीर को पाने का

लाभ यह है कि इस स्वप्न में तुम असलियत या सचाई की—ईश्वर की—अनुभूति कर सकते हो। यही लाभ है। अतः यदि तुम इस स्वप्न का लाभ नहीं उठाते, तो तुम सारी वस्तुओं को गँवा देते हो।

छात्र : तो क्या मैं अर्धसुप्त हूँ?

प्रभुपादः हाँ। स्थिति यही है, अतएव वैदिक ग्रंथ कहते हैं *उत्तिष्ठ*—उठो! उठो! *जाग्रत*—जगो। *प्राप्य वरान् निबोधत*—अब तुम्हें सुअवसर मिला है, इसका उपयोग करो। *तमसि मा ज्योतिर्गम*—अंधकार में मत रहो, प्रकाश में आओ। ये वैदिक आदेश हैं। हम इसी बात की शिक्षा दे रहे हैं। "असलियत अर्थात् कृष्ण यहाँ हैं। इस अँधेरे स्थान पर मत रहो। इस उच्चतर चेतना को प्राप्त करो।" •

८

मांसाहार का नीतिशास्त्र

यह वार्तालाप श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद तथा कार्डिनल जीन डैनीलू के मध्य अगस्त १९७३ में पेरिस में हुआ।

श्रील प्रभुपाद : ईसा मसीह ने कहा, "तू वध नहीं करेगा।" तो फिर ऐसा क्यों है कि ईसाई लोग पशुहत्या करने तथा मांसाहार करने में लगे हुए हैं?

कार्डिनल डैनीलू : वध करना ईसाई धर्म में निश्चित रूप से मना है। किन्तु हमारा विश्वास है कि मनुष्य के जीवन तथा पशु-जीवन में अन्तर है। मनुष्य का जीवन पवित्र है, क्योंकि मनुष्य को ईश्वर के आकार में बनाया गया है। इसीलिए बाइबल में मनुष्य का वध करना मना है।

श्रील प्रभुपाद : किन्तु बाइबल सीधे से ऐसा तो नहीं कहती, "तू मनुष्य का वध नहीं करेगा।" यह व्यापक दृष्टि से कहती है, "तू वध नहीं करेगा।"

कार्डिनल डैनीलू : मनुष्य के लिए पशुओं का वध करना आवश्यक है, जिससे उसे भोजन मिल सके।

श्रील प्रभुपाद : नहीं। मनुष्य फल, शाक तथा अन्न खा सकता है और दूध पी सकता है।

कार्डिनल डैनीलू : मांस नहीं?

श्रील प्रभुपाद : नहीं। मनुष्य शाकाहारी भोजन करने के लिए है। बाघ आपके फल खाने नहीं आता। उसका नियत भोजन पशु का मांस है। लेकिन मनुष्य का भोजन शाक, फल, अन्न तथा दूध की बनी वस्तुएँ है। तो फिर आप यह कैसे कह सकते हैं कि पशु का वध करना पाप नहीं है?

कार्डिनल डैनीलू : हम विश्वास करते हैं कि यह ध्येय पर निर्भर करता है। यदि पशु का वध भूखे को भोजन प्रदान करने के लिए है, तो यह वैध है।

श्रील प्रभुपाद : लेकिन गाय पर विचार करें। हम उसका दूध पीते हैं, इसलिए वह हमारी माता है। आप इसे मानते हैं न?

कार्डिनल डैनीलू : हाँ, अवश्य।

श्रील प्रभुपाद : तो यदि गाय आपकी माता है, तो आप उसके वध का समर्थन किस तरह कर सकते हैं? आप उसका दूध निकालते हैं और जब वह बूढ़ी हो जाती है तथा दूध नहीं दे सकती, तो आप उसका गला काट देते हैं। क्या यह उसी मानवता का तकाजा है? भारत में जो मांसाहारी हैं, उन्हें सलाह दी जाती है कि वे बकरी, सुअर जैसे निम्न पशुओं का या तो भैंस का भी वध करें। किन्तु गो-वध तो सबसे बड़ा पाप है। कृष्णभावनामृत का प्रचार करते समय हम लोगों से यही कहते हैं कि वे किसी तरह का मांस न खाएँ और मेरे शिष्य तो इस नियम का कठोरता से पालन करते हैं। किन्तु यदि किन्हीं परिस्थितियों में अन्यों को मांस खाना पड़े, तो वे किसी निम्न पशु का मांस खाएँ। वे गौवों

का वध न करें। यह सबसे बड़ा पाप है। मनुष्य जब तक पापी बना रहता है, तब तक वह ईश्वर को नहीं समझ सकता। मनुष्य का कर्तव्य है कि ईश्वर को समझे और उनसे प्रेम करे। किन्तु यदि आप पापी बने रहते हैं, तो आप कभी भी ईश्वर को समझ नहीं सकेंगे—उनसे प्यार करना तो दूर रहा।

जब कोई अन्य भोजन न मिले, तो भूखों मरने से बचने के लिए कोई व्यक्ति मांस खा सकता है। यह ठीक है। किन्तु अपनी जीभ को तुष्ट करने के लिए नियमित कसाईघर चलाना अत्यन्त पापमय है। वस्तुतः जब तक आप कसाईघर चलाने की इस क्रूर प्रथा को बन्द नहीं कर देते, आप मानव समाज नहीं बना सकते। यद्यपि कभी-कभी पशु-वध जीवित रहने के लिए आवश्यक हो सकता है, किन्तु कम से कम माता-रूपी पशु यानी गाय का वध तो न किया जाय। यह सहज मानवीय शिष्टाचार है। कृष्णभावनामृत आन्दोलन में हमारी नीति यह है कि हम किसी भी पशु का वध किये जाने की अनुमति नहीं देते। कृष्ण कहते हैं—*पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति*—"मुझे भक्तिभाव से शाक, फल, दूध तथा अन्न अर्पित किये जाँय।" (*भगवद्गीता* ९.२६) हम कृष्ण के भोजन का उच्छिष्ट प्रसाद ही ग्रहण करते हैं। वृक्ष हमें तरह-तरह के फल देते हैं, लेकिन वृक्षों को मारा नहीं जाता। निस्सन्देह, एक जीव दूसरे जीव का भोजन है, किन्तु इसका अर्थ यह तो नहीं कि भोजन के लिए आप अपनी माता का वध कर सकते हैं! गौवें निरीह होती हैं; वे हमें दूध देती हैं। आप उनका दूध दुहते हैं और बाद में आप कसाईघर

में उन्हें मार डालते हैं। यह पापकर्म है।

शिष्य : श्रील प्रभुपाद, ईसाई धर्म में मांसाहार की अनुमति इस दृष्टिकोण पर आधारित है कि निम्न जीव–योनियों में मनुष्यों की तरह आत्मा नहीं होता।

श्रील प्रभुपाद : यह तो मूर्खता है। सर्वप्रथम हमें शरीर के भीतर आत्मा की उपस्थिति के प्रमाण को समझना होता है। तब हम देख सकते हैं कि क्या मनुष्य में आत्मा है और गाय में नहीं। गाय तथा मनुष्य के विभिन्न गुण क्या हैं ? यदि हमें गुणों में अन्तर मिले, तो हम कह सकते हैं कि पशु में आत्मा नहीं होता। किन्तु यदि हम देखें कि मनुष्य तथा पशु में एक–से गुण हैं, तो हम यह कैसे कह सकते हैं कि पशु के आत्मा नहीं होता ? सामान्य लक्षण ये हैं कि पशु खाता है आप खाते हैं, पशु सोता है आप सोते हैं, पशु संभोग करता है आप संभोग करते हैं, पशु आत्मरक्षा करता है आप आत्मरक्षा करते हैं। तो अन्तर कहाँ रहा ?

कार्डिनल डैनीलू : हम स्वीकार करते हैं कि पशु में मनुष्य सरीखा जैव शरीर है, किन्तु आत्मा नहीं होता। हमारा विश्वास है कि आत्मा तो मानव–आत्मा है।

श्रील प्रभुपाद : हमारी *भगवद्गीता* कहती है *सर्वयोनिषु*— "सभी योनियों में आत्मा विद्यमान है।"

कार्डिनल डैनीलू : किन्तु मनुष्य जीवन पवित्र है। मनुष्य पशुओं की अपेक्षा अधिक उच्च स्तर पर सोचते हैं।

श्रील प्रभुपाद : वह उच्चतर स्तर क्या है ? पशु अपने शरीर को बनाये रखने के लिए खाता है और आप भी अपने शरीर के पालन

हेतु भोजन करते हैं। गाय खेत में घास चरती है और मनुष्य आधुनिक मशीनों से खचाखच भरे विशाल कसाईघर से मांस लाकर खाता है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि चूँकि आपके पास बड़ी-बड़ी मशीनें हैं और बीभत्स दृश्य है, जबकि पशु केवल घास खाता है तो आप इतने बढ़े-चढ़े हैं कि आपके शरीर के भीतर ही आत्मा है और पशु के शरीर के भीतर आत्मा नहीं है। यह तर्कविरुद्ध है। हम देख सकते हैं कि पशु तथा मनुष्य में मूलभूत गुण एकसरीखे हैं।

कार्डिनल डैनीलू : किन्तु एकमात्र मनुष्यों में जीवन के अर्थ हेतु आध्यात्मिक खोज पाई जाती है।

श्रील प्रभुपाद : हाँ। तो फिर आप इसकी आध्यात्मिक दृष्टि से खोज कीजिये कि आप ऐसा विश्वास क्यों करते हैं कि पशु के भीतर आत्मा नहीं है—यह है आध्यात्मिक। यदि आप आध्यात्मिक दृष्टि से सोच रहे हैं, तो यह ठीक है। किन्तु यदि आप पशु की तरह सोच रहे हों, तो आपके आध्यात्मिक अध्ययन से क्या लाभ? आध्यात्मिक का अर्थ है, "भौतिक से परे।" *भगवद्गीता* में कृष्ण कहते हैं, *सर्वयोनिषु कौन्तेय*—प्रत्येक प्राणी में आत्मा है। यही है आध्यात्मिक समझ। •

९

स्त्री स्वातन्त्र्य

यह वार्तालाप जुलाई १९७५ में श्रील प्रभुपाद तथा एक महिला संवाददाता के बीच शिकागो के हरे कृष्ण केन्द्र में हुआ।

संवाददाता : जो महिलाएँ पुरुषों के अधीन नहीं रहना चाहतीं, उनके लिए आपकी क्या सलाह है?

श्रील प्रभुपाद : यह मेरा मत नहीं, अपितु वैदिक ग्रन्थों का उपदेश है कि स्त्री को पतिव्रता तथा अपने पति के प्रति आज्ञाकारिणी होना चाहिए।

संवाददाता : हमें संयुक्त राज्य में क्या करना चाहिए? हम महिलाओं को पुरुषों के समान बनाने का प्रयास कर रही हैं।

श्रील प्रभुपाद : आप कभी भी पुरुषों के तुल्य नहीं हो सकेंगी, क्योंकि कई प्रकार से आपके कार्य भिन्न हैं। आप कृत्रिम रूप से क्यों कहती हैं कि ये स्त्रियाँ पुरुषों के समान हैं? पत्नी को गर्भधारण करना पड़ता है, पति को नहीं। आप इसे कैसे बदल सकती हैं? क्या यह सम्भव है कि पति-पत्नी दोनों गर्भधारण करें?

संवाददाता : (कोई उत्तर नहीं)।

श्रील प्रभुपाद : क्या यह सम्भव है?

संवाददाता : नहीं। यह सम्भव नहीं।

श्रील प्रभुपाद : तब स्वभावतः एक को दूसरे से पृथक् रीति से कार्य करना होता है।

संवाददाता : तो इसका यह अर्थ क्यों लिया जाता है कि स्त्रियों को अधीन (आश्रित) रहना है—सिर्फ इसलिए कि वे बच्चे पैदा करती हैं और पुरुष नहीं कर सकते?

श्रील प्रभुपाद : स्वभावतः ज्योंही आपको बच्चा हो जाता है, आपको अपने पति का सहारा चाहिए। अन्यथा आप कठिनाई में पड़ जाती हैं।

संवाददाता : बच्चेवाली बहुत सी महिलाओं को उनके पति का सहारा नहीं मिलता। उनको...

श्रील प्रभुपाद : तब उन्हें दूसरों का सहारा लेना पड़ता है। आप इससे इनकार नहीं कर सकतीं। उन्हें सरकार सहारा देती है। आजकल सरकार परेशान है। यदि पति अपनी पत्नी तथा बच्चों का सहारा बने, तो सरकार बहुत से कल्याणकार्य के व्यय से बच जाय। तो यह एक समस्या है।

संवाददाता : तब क्या होता है, जब महिलाएँ पुरुषों का सहारा बनती हैं?

श्रील प्रभुपाद : सर्वप्रथम यह समझने का प्रयत्न करें कि आप आश्रित हैं। जब पुरुष तथा स्त्री संयुक्त होते हैं, तो बच्चे होते हैं। और यदि पुरुष चला जाता है, तो आप परेशानी में पड़ती हैं—स्त्री परेशानी में पड़ती है। क्यों? बेचारी स्त्री बच्चे को लेकर परेशानी में पड़ती है—उसे सरकार से याचना करनी पड़ती है।

तो क्या आपको लगता है कि यह अच्छा है? वैदिक विचार यह है कि स्त्री का विवाह पुरुष से किया जाय और पुरुष उस स्त्री तथा बच्चों की देखभाल करे—स्वतन्त्र रूप से—जिससे वे सरकार या जनता पर बोझ न बनें।

संवाददाता : क्या आप सोचते हैं कि सामाजिक अशान्ति...

श्रील प्रभुपाद : मैं इस तरह सोच रहा हूँ। आप मुझे इसका जवाब दें! आप तो लगातार प्रश्न ही करती जा रही हैं। अब मैं आप से प्रश्न करूँगा। क्या आप सरकार तथा जनता पर इस बोझ को ठीक समझती हैं?

संवाददाता : मैं समझ नहीं पा रही कि आप क्या कह रहे हैं।

श्रील प्रभुपाद : प्रतिवर्ष सरकार को आश्रित बच्चों की सहायता के लिए लाखों डालर व्यय करने पड़ते हैं। जब पति अपनी पत्नी से दूर चला जाता है, तो इस तरह का जो बोझ सरकार तथा जनता पर पड़ता है, क्या उसे आप अच्छा समझती हैं?

संवाददाता : नहीं।

श्रील प्रभुपाद : ऐसा इसलिए हुआ है, क्योंकि स्त्री को अधीनता स्वीकार नहीं। वह "समान स्वतन्त्रता" चाहती है।

संवाददाता : और यदि स्त्रियाँ पुरुषों के अधीन हों, तो क्या उससे हमारी सारी समस्याएँ हल हो जाएँगी?

श्रील प्रभुपाद : हाँ। पति चाहता है कि उसकी पत्नी अधीन रहे—उसके प्रति आज्ञाकारिणी रहे। तब वह भार उठाने के लिए तैयार है। पुरुष की मनोवृत्ति तथा स्त्री की मनोवृत्ति भिन्न-भिन्न होती है। यदि स्त्री पुरुष की आज्ञाकारिणी तथा उसके अधीन

रहना स्वीकार करती है, तो पारिवारिक जीवन शान्तिपूर्ण होगा। अन्यथा पति चला जाता है, स्त्री बच्चों से परेशान रहती है और यह सब सरकार तथा जनता पर बोझ बन जाता है।

संवाददाता : जब कोई स्त्री काम करने लगती है, तो क्या इसमें कोई बुराई है?

श्रील प्रभुपाद : ऐसी अनेक बातें हैं जो बुरी हैं, किन्तु पहली बात यह है कि किसी पुरुष की पत्नी तथा बच्चे सरकार या जनता पर भार क्यों बनें? सर्वप्रथम आप इसका उत्तर दें। वह भार क्यों बने?

संवाददाता : (कोई उत्तर नहीं)

श्रील प्रभुपाद : आपका उत्तर क्या है?

संवाददाता: पुरुष भी सरकार पर बोझ होते हैं।

श्रील प्रभुपाद : क्या आप सामाजिक दृष्टिकोण से यह सोचती हैं कि स्त्रियों तथा पितृविहीन बालकों की यह स्थिति बहुत अच्छी बात है?

संवाददाता : मैं जो कहना चाह रही हूँ वह यह है कि... ऐसा कुछेक स्त्रियों के साथ हो सकता है... मैं तो उन स्त्रियों की बात कर रही हूँ जो ऐसी नहीं हैं...

श्रील प्रभुपाद : यह सामान्य प्रवृत्ति है। आप "कुछ" नहीं कह सकतीं। अमरीका में मैं देखता हूँ कि अधिकांशतया स्त्रियाँ ही हैं जो...। स्त्री को पति के अधीन होना चाहिए, जिससे पुरुष स्त्री का भार अपने ऊपर ले सके। तब स्त्री जनता के लिए कोई समस्या नहीं बनती।

संवाददाताः क्या यह सारी स्त्रियों तथा सारे पुरुषों के लिए सत्य है?

श्रील प्रभुपाद : हाँ। यह प्रकृति का नियम है। आप कुत्तों को ही लें। वे भी अपने बच्चों की देखरेख करते हैं। बाघ, वे भी अपने बच्चों की देखरेख करते हैं। अतः यदि मानव-समाज में स्त्री गर्भवती हो जाय और मनुष्य चला जाय, तो वह कष्ट में पड़ जाती है—उसे सरकार से याचना करनी पड़ती है। यह बहुत अच्छी स्थिति नहीं है।

संवाददाता : उन स्त्रियों के बारे में क्या, जिनके बच्चे नहीं होते?

श्रील प्रभुपाद : यह तो दूसरी अस्वाभाविक स्थिति है। कभी-कभी वे गर्भनिरोधक साधनों का इस्तेमाल करती हैं या अपने बच्चों को मार डालती हैं—गर्भपात कराती हैं। यह भी बहुत अच्छी बात नहीं है। ये सब पापकर्म हैं।

संवाददाता : फिर से कहें?

श्रील प्रभुपाद : ये पापकर्म हैं—गर्भ में बच्चे का वध और गर्भपात कराना पापकर्म है। इसके लिए कष्ट भोगना पड़ता है।

संवाददाता : क्या इस देश में जो सामाजिक अशान्ति है, वह इसके कारण...

श्रील प्रभुपाद : इन्हीं कारणों से। लोग इसे नहीं जानते। •

१०

आप सर्वोपरि नहीं हैं

यह वार्तालाप वृन्दावन (भारत) में सितम्बर १९७५ में श्रील प्रभुपाद तथा उनके कुछ शिष्यों के बीच प्रात:कालीन भ्रमण के समय हुआ।

श्रील प्रभुपाद : जीव तथा भगवान् कृष्ण दोनों ही चेतना से ओत-प्रोत हैं। जीव की चेतना उसके भीतर रहती है, किन्तु कृष्ण की चेतना सर्वत्र व्याप्त रहती है। यही अन्तर होता है।

शिष्य : मायावादी (निर्विशेषवादी) कहते हैं कि मुक्त हो जाने पर हम भी सर्वत्र व्याप्त हो जाएँगे। हम ब्रह्म में मिल जाएँगे और अपनी व्यष्टि पहचान खो देंगे।

श्रील प्रभुपाद : इसका अर्थ यह हुआ कि तुम सब कुछ भूल जाओगे। तुममें जो थोड़ी बहुत चेतना थी, वह समाप्त हो जाएगी।

शिष्य : किन्तु हम जो भी भूलेंगे वह तो वैसे भी माया है।

श्रील प्रभुपाद : यदि यही मुक्ति (मोक्ष) है, तो मैं अभी तुम्हें मारे डालता हूँ। तुम सब कुछ भूल जाओगे—मुक्ति मिल जाएगी। (ठहाके लगते हैं)

(एक राहगीर हिन्दी में गाता जा रहा है) यह मुक्ति है—वह

गा रहा है, "हे भगवान् कृष्ण! मैं कब आपके चरणकमलों की शरण पाऊँगा?" यह मुक्ति है। जिस तरह एक बालक जो अपने माता-पिता के प्रति पूर्णतया समर्पित होता है—वह मुक्त होता है। उसे कोई चिन्ता नहीं रहती। वह आश्वस्त रहता है, "मेरे माता-पिता यहाँ हैं। वे जो भी करते हैं, वह मेरे लिए ठीक है। मुझे कोई नुकसान नहीं पहुँचा सकता।"

शिष्य : निर्विशेषवादी तो कहते हैं कि समस्त कष्ट से छुटकारा पाना ही मुक्ति है।

श्रील प्रभुपाद : हाँ, यदि तुम चिन्ताओं से लदे पड़े हो, तो तुम्हारी मुक्ति कहाँ हुई?

शिष्य : वे कहते हैं कि यदि हम ब्रह्म से एकाकार हो जाएँ, तो मुक्ति प्राप्त हो जाती है।

श्रील प्रभुपाद : कृष्ण परम चेतना हैं। यदि आप अपनी चेतना खो दें, तो आप उनसे एकाकार कैसे हो सकते हैं?

शिष्य : पूर्ण रूप से ऐसा नहीं हैं कि हम अपनी चेतना खो देते हैं, अपितु हम परम चेतना में विलीन हो जाते हैं।

श्रील प्रभुपाद : इसका अर्थ यह हुआ कि तुम ईश्वर बनना चाहते हो। किन्तु इस समय तुम ईश्वर से भिन्न क्यों हो?

शिष्य : यह तो मेरी लीला है।

श्रील प्रभुपाद : किन्तु यदि यह तुम्हारी लीला है, तो तुम मुक्ति पाने के लिए इतनी तपस्या क्यों कर रहे हो?

शिष्य : बात यह है कि परम चेतना अशरीरी है, किन्तु हम इस समय देहधारी हैं। अतः जब हम परम चेतना को प्राप्त कर लेंगे,

तो हम भी अशरीरी बन जाएँगे।

श्रील प्रभुपाद : किन्तु यदि तुम सर्वोपरि हो, तो तुम देहधारी कैसे बने ? तुम्हें शरीरधारी किसने बनाया ? तुम्हें शरीरधारी बनना पसन्द नहीं—शरीर से इतने कष्ट मिलते हैं—इसलिए तुम मुक्ति चाहते हो। किन्तु जिस किसी ने तुम्हें शरीरधारी बनाया—वे परम हैं। तुम परम नहीं हो।

शिष्य : मैं अपने आप को माया में रखता हूँ, जिससे मैं मुक्त बनने का आनन्द पा सकूँ।

श्रील प्रभुपाद : भला कोई विज्ञ व्यक्ति क्यों अपने को ऐसी स्थिति में रखेगा, जिसमें वह जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधि के रूप में भौतिक प्रकृति द्वारा बारम्बार लतियाया जाय ? इसमें क्या आनन्द है ?

शिष्य : बिना कष्ट के आप आनन्द का अनुभव कैसे कर सकते हैं ?

श्रील प्रभुपाद : तो मुझे तुम्हें लतियाने दो, और जब मैं रुक जाऊँगा, तब तुम आनन्द का अनुभव करना।

शिष्य : भाव यह है कि इस जगत में कष्ट का अनुभव करने के बाद मुक्ति अत्यन्त मधुर लगेगी।

श्रील प्रभुपाद : लेकिन कष्ट क्यों होता है ? यदि तुम सर्वोपरि हो, तो तुम्हारे लिए कुछ भी कष्ट क्यों है ? यह क्या बेहूदगी है— "कष्ट तो मेरी लीला है ?"

शिष्य : कष्ट तो उनके लिए है, जो यह नहीं समझते कि वे ब्रह्म हैं। वे ही कष्ट पाते हैं, लेकिन मैं नहीं।

श्रील प्रभुपाद : तब तो तुम कूकरों-सूकरों के समान ही हो। वे यह नहीं समझते कि यह कष्ट है। किन्तु हम समझते हैं। इसलिए मायावादी *मूढ* हैं—धूर्त तथा मूर्ख हैं—जो यह भी नहीं जानते कि कष्ट क्या है या आनन्द क्या है। *मूढोऽयं नाभिजानाति मामेभ्यः परम् अव्ययम्।* (*भगवद्गीता* ७.२५) कृष्ण कहते हैं, "मूर्ख तथा धूर्त यह नहीं जानते कि मैं परम पुरुष हूँ।"
इसलिए अनेक जन्मों तक कष्ट सहने तथा बेहूदा बातें करने के बाद जिसे असली ज्ञान हो जाता है, वह कृष्ण की शरण में आता है (*बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते*)। (*भगवद्गीता* ७.१९) ज्ञान यह है। जब कोई व्यक्ति यह जान लेता है कि, "मैंने केवल कष्ट पाया है और मैंने शब्दजाल से अपने आपको धोखा दिया है," तब वह कृष्ण की शरण में जाता है।

शिष्य : तो मायावाद दर्शन वस्तुतः सबसे बड़ा भ्रम है?

श्रील प्रभुपाद : हाँ। *मायावादी भाष्य शुनिले हय सर्वनाश* (*चैतन्य चरितामृत* ६.१६९)—"जो कोई मायावादी दर्शन को अपनाता है, वह नष्ट हो जाता है।" वह विनाशोन्मुख हो जाता है। वह उस मिथ्या दर्शन में भ्रष्ट हो जाएगा और असली दर्शन को कभी स्वीकार नहीं कर पायेगा। मायावादी अपराधी हैं। इसलिए वे सदा-सदा अज्ञान में रहेंगे और अपने आप को ईश्वर समझते रहेंगे। वे खुला प्रचार करते हैं, "तुम यह क्यों सोचते हो कि तुम पापी हो? तुम ईश्वर हो।"

शिष्य : ईसाइयों में पाप की धारणा है। जब मायावादी अमरीका

गये, तो उन्होंने ईसाइयों से कहा, "तुम इस पाप भावना को भूल

जाओ। तुम जो भी करते हो वह सब ठीक है, क्योंकि तुम ईश्वर हो।"

श्रील प्रभुपाद : ईसाई पादरियों को मायावादी दर्शन अच्छा नहीं लगा। मायावादी नास्तिक होते हैं, बौद्धों से भी बढ़कर। बौद्ध-जन वैदिक प्रमाण को नहीं मानते। इसलिए वे नास्तिक माने जाते हैं। किन्तु ये मायावादी धूर्त वेदों को मानते हैं और फिर भी नास्तिकता का प्रचार करते हैं। इसलिए वे बौद्धों की अपेक्षा अधिक खतरनाक हैं। बौद्ध यद्यपि नास्तिक समझे जाते हैं, तो भी ये भगवान् बुद्ध को पूजते हैं। बुद्ध कृष्ण के अवतार हैं, इसलिए एक न एक दिन उनका उद्धार हो जाएगा। किन्तु मायावादियों का उद्धार कभी नहीं होगा।

भगवद्गीता (१८.६६) में कृष्ण हमें आश्वस्त करते हैं, "मेरी शरण में आओ और मैं तुम्हें सारे संकटों से मुक्त कर दूँगा।" और हम कृष्ण को स्वीकार करते हैं। बस। हमारी विधि अत्यन्त आसान है। बालक चलने की कोशिश करता है, किन्तु वह नहीं चल पाता। वह लड़खड़ाता है। पिता कहता है, "बच्चे! मेरा हाथ पकड़ लो।" तब वह बालक सुरक्षित हो जाता है।

ये मायावादी-जन ईश्वर के फैसले के विरुद्ध चलते हैं। ईश्वर कहते हैं, "सारे जीव मेरे विभिन्नांश हैं।" और मायावादी कहते हैं, "मैं ईश्वर हूँ।" यही उनकी मूर्खता है। यदि वे ईश्वर के तुल्य होते, तो ईश्वर यह क्यों कहते, "मेरी शरण में आओ?" वे ईश्वर नहीं हैं। वे निरे धूर्त हैं, जो अपने को ईश्वर के तुल्य होने का दावा करते हैं, क्योंकि वे उसकी शरण में नहीं जाना चाहते।

तो यह ज्ञान कि "मुझे ईश्वर की शरण में जाना चाहिए"— अनेकानेक जन्मों के बाद ही आता है। तब मनुष्य यह व्यर्थ का शब्दजाल त्याग देता है और कृष्णभावना में असली मुक्ति पाता है। •

११

कर्म किस तरह पूजा बन सकता है

यह वार्तालाप जून १९७४ में जेनेवा में प्रातःकालीन भ्रमण के समय श्रील प्रभुपाद एवं उनके कतिपय शिष्यों के बीच हुआ।

शिष्य : जब *भगवद्गीता* में कृष्ण कहते हैं कि हमें निष्काम (इच्छारहित) होना चाहिए, तो वे क्या कहना चाहते हैं?

श्रील प्रभुपाद : वे यह कहना चाहते हैं कि हमें केवल उनकी सेवा करने की ही इच्छा करनी चाहिए। श्री चैतन्य महाप्रभु ने कहा है— *न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये*— "मैं धन नहीं चाहता, मैं अनुयायी नहीं चाहता, मैं सुन्दर स्त्रियाँ नहीं चाहता।" तो वे क्या चाहते हैं? "मैं कृष्ण की सेवा करना चाहता हूँ।" वे यह नहीं कहते कि, "मुझे यह नहीं चाहिए, वह नहीं चाहिए। मैं शून्य बनना चाहता हूँ।" नहीं।

शिष्य : अभक्त भी कहता है कि वह जानता है कि उसे क्या चाहिए, किन्तु वह कहता है, "मैं कृष्ण के बिना ही अच्छे परिणाम पा सकता हूँ।"

श्रील प्रभुपाद : तब तो वह मूर्ख है, क्योंकि वह नहीं जानता कि अच्छे परिणाम वास्तव में हैं क्या। वह आज किसी एक "अच्छे परिणाम" के लिए श्रम कर रहा है, किन्तु कल वह कुछ

और चाहेगा, क्योंकि मरने पर उसका शरीर बदलेगा। कभी वह कुत्ते का शरीर धारण करेगा और दूसरा "अच्छा परिणाम" चाहेगा। कभी वह देवता का शरीर धारण कर सकता है; फिर वह कोई और "अच्छा परिणाम" चाहेगा। *भ्रमताम् उपर्यधः*—वह ब्रह्माण्ड में ऊपर-नीचे घूमता रहता है, जिस तरह कि—उसे क्या कहते हैं?

शिष्य : गोल चक्का।

श्रील प्रभुपाद : हाँ। कभी वह ऊपर आता है और पुनः उसे नीचे आना पड़ता है तथा कुत्ते या शूकर का शरीर धारण करना पड़ता है। ऐसा चलता रहता है—

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान् जीव।
गुरु-कृष्ण-प्रसादे पाय भक्ति-लता-बीज॥

"कई जन्मों तक ब्रह्माण्ड में ऊपर-नीचे घूमने के बाद जो व्यक्ति अत्यन्त भाग्यशाली होता है, वह गुरु तथा कृष्ण की कृपा से भक्तिमय जीवन को प्राप्त होता है।"(चैतन्य चरितामृत, मध्य १९.१५१)

शिष्य : तब तो अभक्त कहेगा, "हम भी अच्छी सेवा कर रहे हैं। आप भोजन बाँट रहे हैं और हम भी भोजन बाँट रहे हैं। आप पाठशालाएँ खोल रहे हैं और हम भी वही कर रहे हैं।"

श्रील प्रभुपाद : हाँ, किन्तु हम वे पाठशालाएँ खोल रहे हैं, जिनमें कृष्णभावना का ज्ञान दिया जाता है, जबकि आपकी पाठशालाएँ माया पढ़ाती हैं। समस्या यह है कि ये धूर्त भक्ति

(भक्तिमय सेवा) तथा कर्म (भौतिक कार्यकलाप) के अन्तर को

नहीं समझ सकते। भक्ति कर्म जैसी लगती है, किन्तु यह कर्म नहीं है। भक्ति में हम भी कार्य करते हैं, किन्तु कृष्ण के लिए करते हैं। यही अन्तर है।

उदाहरणार्थ, अर्जुन कुरुक्षेत्र युद्ध में लड़ा, लेकिन चूँकि वह कृष्ण के लिए लड़ा इसलिए वह महान भक्त माना जाता है। कृष्ण ने उससे कहा—*भक्तोऽसि मे... प्रियोऽसि मे* (*भगवद्गीता* ४.३)—"हे अर्जुन, तुम मेरे प्रिय भक्त हो।" अर्जुन ने क्या किया? वह लड़ा, बस इतना ही; किन्तु वह कृष्ण के लिए लड़ा। यही रहस्य है। उसने योद्धा के रूप में अपनी लड़ाकू क्षमता नहीं बदली, अपितु उसने अपनी मनोवृत्ति बदली। पहले तो वह सोच रहा था, "मैं अपने स्वजनों को क्यों मारूँ? मैं युद्धभूमि छोड़ कर जंगल चला जाऊँ और साधु बन जाऊँ।" किन्तु कृष्ण चाहते थे कि वह युद्ध करे, अतएव अन्त में उसने उनकी शरण ग्रहण की और कृष्ण की सेवा के रूप में युद्ध किया। अपनी इन्द्रियतृप्ति के लिए नहीं, अपितु कृष्ण की इन्द्रियतृप्ति के लिए।

शिष्य : तो क्या भक्ति में भी इन्द्रियतृप्ति होती है?

श्रील प्रभुपाद : हाँ। एक कर्मी (भौतिकतावादी) अपनी खुद की इन्द्रियतृप्ति के लिए कार्य करता है, किन्तु भक्त कृष्ण की इन्द्रियतृप्ति के लिए कार्य करता है। अभक्त तथा भक्त के बीच यही अन्तर है। दोनों किस्सों में इन्द्रियतृप्ति रहती ही है, किन्तु जब आप निजी इन्द्रियतृप्ति के लिए कार्य करते हैं, तो यह *कर्म* है और जब कृष्ण की इन्द्रियतृप्ति के लिए, तो वह *भक्ति* है। भक्ति तथा कर्म एक से दिखते हैं, लेकिन उनकी गुणता भिन्न है।

दूसरा उदाहरण है गोपियों का व्यवहार। कृष्ण सुन्दर कुमार थे और गोपियाँ उनके प्रति आकृष्ट हुईं थीं। वे उन्हें अपना प्रेमी बनाना चाहती थीं और वे उनके साथ नृत्य करने के लिए अर्धरात्रि में अपने घरों से बाहर चली गईं थीं। अतः ऐसा लगता है कि उन्होंने पापकर्म किया हो, किन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि केन्द्रबिन्दु कृष्ण थे। इसीलिए चैतन्य महाप्रभु संस्तुति करते हैं—*रम्या काचिद् उपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता*—"कृष्ण की पूजा करने की कोई भी विधि गोपियों द्वारा अपनाई गई विधि से श्रेष्ठ नहीं है।"

किन्तु धूर्तजन सोचते हैं, "ओह! यह बहुत उत्तम है। कृष्ण तो दूसरों की पत्नियों के साथ अर्धरात्रि में नाचे, अतः चलो हम भी कुछ लड़कियाँ एकत्र करके नाचें और कृष्ण की ही तरह आनन्द लें।" गोपियों के साथ कृष्ण की लीलाओं के विषय में यह निपट भ्रम है। इस भ्रम को रोकने के लिए ही *श्रीमद्भागवत* के रचयिता श्रील व्यासदेव ने कृष्ण के पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के पद का वर्णन करने के लिए *श्रीमद्भागवत* के नौ स्कन्धों की रचना की। उसके बाद वे गोपियों के साथ कृष्ण के व्यवहार का वर्णन करते हैं। किन्तु ये धूर्तजन कूदकर तुरन्त ही दशम स्कन्ध में पहुँच जाते हैं, जिसमें गोपियों के साथ कृष्ण के व्यवहारों का वर्णन है। इस तरह वे *सहजिया* (कृष्ण के नकलची) बन जाते हैं।

शिष्य : क्या ऐसे व्यक्तियों के हृदयों में परिवर्तन होगा, क्योंकि वे किसी न किसी रूप में कृष्ण से सम्बन्धित रहते हैं?

श्रील प्रभुपाद : नहीं। कंस भी कृष्ण से सम्बन्ध रखता था, किन्तु शत्रु के रूप में। यह *भक्ति* नहीं है। भक्ति को *अनुकूल्येन कृष्णानुशीलनम्*—अनुकूल होना चाहिए। न तो कृष्ण का अनुकरण करना चाहिए, न ही उनको मार डालने का प्रयास करना चाहिए। यह भी कृष्णभावना है, किन्तु यह अनुकूल नहीं है; इसलिए भक्ति नहीं है। तो भी कृष्ण के शत्रु मुक्ति पाते हैं, क्योंकि वे किसी न किसी रूप में कृष्ण का *चिन्तन* करते रहे हैं। उन्हें निर्विशेष मुक्ति मिलती है, किन्तु उन्हें वैकुण्ठ की कृष्ण-लीलाओं में प्रवेश नहीं करने दिया जाता। यह वरदान तो उनके लिए ही सुरक्षित रहता है, जो कृष्ण की शुद्ध प्रेमाभक्ति करते हैं। ●

१२

ईसाई, साम्यवादी तथा गो-हत्यारे

यह बातचीत श्रील प्रभुपाद और उनके कुछ शिष्यों के बीज मार्च १९७५ में डल्लास में प्रात:कालीन भ्रमण के समय हुई।

श्रील प्रभुपाद : ईसाई लोग कहते हैं, "हम सभी तरह के पाप कर सकते हैं, लेकिन ईसा मसीह हमारे पापों को अपने ऊपर ले लेंगे। उनका हमसे समझौता हुआ है।" क्या वे कुछ ऐसा नहीं कहते?

शिष्य : हाँ।

श्रील प्रभुपाद : बेचारे ईसा को उन सबके पापकर्मों के लिए भुगतना पड़ता है। वे कहते हैं, "वे हमें पाप से बचाना चाहते थे, अतएव उन्होंने हमें आदेश दिया है कि हमें इसकी परवाह नहीं करनी है कि हम पाप करते हैं या नहीं।" यह तो छलावा है।

मेलबोर्न में कुछ पादरियों ने मुझे व्याख्यान के लिए बुलाया था। उन्होंने मुझसे प्रश्न किया, "आप ऐसा क्यों सोचते हैं कि ईसाई धर्म मुरझा रहा है? हमने क्या किया है?" अत: मैंने उत्तर दिया, "आपने क्या नहीं किया है? आप दावा करते हैं कि आप लोग ईसा मसीह के अनुयायी हैं, फिर भी आप सभी तरह के

पापकर्म करते रहते हैं। अतएव आप लोगों को तुरन्त ही इस छलावे को बन्द करना होगा।" वे इस उत्तर से बहुत प्रसन्न नहीं हुए।

वे पूछते हैं, "हमने क्या किया है?" उन्होंने कितने सारे पापकर्म किये हैं, लेकिन वे मानने को तैयार नहीं कि वे पापी हैं। यह दम्भ है। अपने दस आदेशों में बाइबल स्पष्ट कहती है, "तू वध नहीं करेगा।" किन्तु ये लोग आज्ञा नहीं मानते। यह पापपूर्ण है।

ये जानबूझकर पाप करने वाले हैं। यदि कोई अज्ञानवश पापकर्म करे, तो उसके लिए कुछ छूट हो सकती है, किन्तु ये जान बूझकर पापी हैं। ये जानते हैं कि गोवध पापमय है, फिर भी ये ऐसा करते हैं।

शिष्य : श्रील प्रभुपाद, अधिकांश ईसाई यह नहीं मानते कि मांसाहार पाप है।

श्रील प्रभुपाद : इसका अर्थ यह हुआ कि बाइबल की गलत व्याख्या करने के कारण ये पादरी धूर्त हैं। यह छलावा धर्म के नाम पर चल रहा है। किन्तु ऐसे विचारों का प्रचार करने वाले कितने समय तक अन्यों को ठगते रहेंगे? आप सारे लोगों को कभी-कभी ठग सकते हैं और कुछ लोगों को सदा ठग सकते हैं, किन्तु सभी लोगों को आप सदैव नहीं ठग सकते।

शिष्य : साम्यवादी भी तर्क करते हैं कि ईसाई धर्म दम्भ है। वे कहते हैं कि यह (धर्म) "लोगों के लिए अफीम है" इसलिए वे इसे मिटा देना चाहते हैं।

श्रील प्रभुपाद : साम्यवादियों को ईसाई धर्म का बहुत बुरा अनुभव है और उन्हें इसकी जानकारी नहीं है कि धर्म की आवश्यकता होती ही है। इसलिए वे सारे धर्मों का सफाया करना चाहते हैं।

शिष्य : साम्यवादी कहते हैं कि संसार की समस्याएँ इतनी बड़ी हैं कि जब तक लोग विश्व- सरकार के प्रति अपनी निष्ठा नहीं दिखाते, समस्याएँ हल नहीं की जा सकतीं।

श्रील प्रभुपाद : हम भी यही कहते हैं। कृष्ण परमेश्वर हैं, उनकी शरण ग्रहण करो और सारी समस्याएँ हल हो जाएँगी। हम भी यही शिक्षा देते हैं।

शिष्य : लेकिन साम्यवादी इस बात से भटक गये हैं कि कृष्ण को ही परमेश्वर स्वीकार किया जाए।

श्रील प्रभुपाद : *एकले ईश्वर कृष्ण, आर सब भृत्य*—"एकमात्र स्वामी कृष्ण हैं। अन्य सारे जन उनके दास हैं।" यही *भगवद्गीता* का केन्द्रीय सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त को स्वीकार कीजिए, तो सब कुछ तुरन्त ठीक हो जाएगा।

यदि आप *भगवद्गीता* का अभ्यास करेंगे, तो आपको एक भी ऐसा शब्द नहीं मिलेगा, जिसका आप खंडन कर सकें या जो आपके लिए शुभ न हो। सम्पूर्ण *भगवद्गीता* व्यावहारिक है—मानव सभ्यता के लिए अनुकूल। सर्वप्रथम कृष्ण यह शिक्षा देते हैं कि आप यह अवश्य समझें कि आप कौन हैं। आप शरीर नहीं हैं। आप शरीर के भीतर आत्मा हैं। इसे कौन जानता है? *भगवद्गीता* में कृष्ण यही पहली शिक्षा देते हैं। ज्योंही आप

समझ जाते हैं कि आप शरीर नहीं अपितु शरीर के भीतर हैं, तो आप समझ जाते हैं कि आत्मा है क्या। तब आपका आध्यात्मिक ज्ञान आगे बढ़ता है, किन्तु ये मूढ़ यही नहीं जानते कि आत्मा क्या है। अतः उन्हें कोई आध्यात्मिक ज्ञान नहीं है।

शिष्य : वे समझते हैं कि गौवों को आत्मा नहीं होता।

श्रील प्रभुपाद : वे यह कैसे कह सकते हैं कि गौवों को आत्मा नहीं होता? आपको आत्मा है। आपका शरीर चलता-फिरता है, आप काम करते हैं, आप खाते हैं, आप बातें करते हैं। लेकिन ज्योंही आपके शरीर से आत्मा चला जाता है, शरीर मृत पदार्थ हो जाता है। हाथ-पाँव तब भी वहाँ होते हैं, लेकिन वे कार्य नहीं करेंगे, क्योंकि आत्मा चला गया है।

तो फिर गाय के शरीर तथा आपके शरीर में अन्तर ही क्या है? मानवीय तर्क पर उतरिये। क्या आपके शरीर तथा गाय के शरीर में कोई महत्त्वपूर्ण अन्तर है?

शिष्य : नहीं। किन्तु अब तो वे यहाँ तक कहने लगे हैं कि मनुष्यों में भी आत्मा नहीं होता। वे कहते हैं कि चूँकि गायों के आत्मा नहीं होता, अतः हम गाय का भक्षण कर सकते हैं और चूँकि मनुष्यों में आत्मा नहीं होता...

श्रील प्रभुपाद : ...तो आप बच्चे को गर्भ में ही मार सकते हैं। अज्ञान की प्रगति को सभ्यता की प्रगति माना जाता है। क्यों? क्योंकि कोई आध्यात्मिक ज्ञान नहीं रहा।

(श्रील प्रभुपाद तथा उनके शिष्य गोल्फ खेल रहे एक व्यक्ति के समीप से गुजरते हैं।)

शिष्य : वह व्यक्ति सोचता है कि वह कठिन कार्य से निवृत्ति ले चुका है, किन्तु फिर भी वह गेंद को छेद में डालने के लिए कठिन श्रम कर रहा है।

श्रील प्रभुपाद : वह और कर ही क्या सकता है? वह नहीं जानता कि एक अन्य कार्य भी है—आध्यात्मिक जीवन। यही उसका अज्ञान है।

जब न्यूयार्क में बिजली गुल हो गई, तो आंकड़े बताते हैं कि अधिक स्त्रियाँ गर्भवती हो गईं। लोग अँधेरे में और कर ही क्या सकते थे? "चलो संभोग करें।" बस। आध्यात्मिक ज्ञान के बिना मनुष्य पशुतुल्य हो जाते हैं। •

१३

यौन तथा दु:ख-भोग

यह वार्तालाप जनवरी १९७४ में कैलीफोर्निया के वेनिस तट में प्रात:कालीन भ्रमण के समय श्रील प्रभुपाद तथा उनके कतिपय शिष्यों के मध्य हुआ।

शिष्य : श्रील प्रभुपाद, यहाँ कैलीफोर्निया में तलाक की दर लगभग ५०% है। आपके विचार में ऐसा क्यों है?

श्रील प्रभुपाद : भारत में कहावत है कि जो विवाहित है वह पछताता है और जो अविवाहित है वह भी पछताता है। विवाहित व्यक्ति पछताता है कि, "मैंने क्यों विवाह किया? मैं स्वतन्त्र रह सकता था।" और जो विवाहित नहीं है वह पछताता है, "ओह! मैंने पत्नी क्यों नहीं स्वीकार की? मैं सुखी रहा होता।" (ठहाके)

संभोग से शिशु उत्पन्न होता है और शिशु उत्पन्न होते ही कष्ट शुरू हो जाता है। शिशु को कष्ट होता है और माता-पिता भी उसकी देखरेख करते हुए कष्ट पाते हैं। लेकिन फिर से उन्हें दूसरी सन्तान आ जाती है। इसीलिए *श्रीमद्भागवत* (७.९.४५) में कहा गया है—*तृप्यन्ति नेह कृपणा बहु-दुःख-भाजः।* इस सन्तान को उत्पन्न करने में इतनी अधिक कठिनाई तथा मुसीबत है, लेकिन

इसे जानते हुए भी मनुष्य पुनः सन्तान उत्पन्न करता है।

इस भौतिक जगत में यौन प्रमुख सुख है। यह प्रमुख सुख है और यह अतीव गर्हित भी है। यह सुख क्या है? *कण्डूयनेन करयोरिव दुःखदुःखम्।* यह खुजली से छुटकारा पाने के लिए दोनों हाथों को रगड़ने जैसा है। संभोग से अनेक बुरे फल उत्पन्न होते हैं, लेकिन फिर भी मनुष्य सन्तुष्ट नहीं होता। अब तो गर्भनिरोध के साधन, गर्भपात—अनेक साधन हैं। माया अत्यन्त प्रबल है। वह कहती है, "हाँ, इसे करो और इसमें उलझ जाओ।"

इसलिए *भागवत* में कहा गया है—*कण्डूतिवन्मनसिजं विषहेत धीरः*—जो मनुष्य *धीर* है, वह यौन कामना की इस खुजलाहट को सहता है। जो व्यक्ति इस खुजलाहट को सह सकता है, वह कई मुसीबतों से बच जाता है; किन्तु जो नहीं सह पाता, वह उसमें तुरन्त फँस जाता है। यौन चाहे वैध हो या अवैध, है कष्टप्रद।

शिष्य : श्रील प्रभुपाद, हम इधर पहली बार घूमने आये हैं। हर वस्तु भिन्न तथा नई लगती है।

श्रील प्रभुपाद : (हँसते हैं) यह भौतिक जीवन है। कभी हम इधर घूमते हैं, कभी उधर और सोचते हैं, "यह नया है।" *ब्रह्माण्ड भ्रमिते*—हम कुछ न कुछ नया खोजने के प्रयास में सारे ब्रह्माण्ड में घूम रहे हैं। लेकिन कुछ भी नया नहीं है; सब कुछ पुराना है।

जब मनुष्य बूढ़ा हो जाता है तो सामान्यतया सोचता है,

"ओह! यह जीवन इतना कष्टप्रद है!" अतः उसे बदल कर नया शरीर अर्थात् बच्चे का शरीर धारण करने की अनुमति दे दी जाती है। बच्चे की देखरेख की जाती है और वह सोचता है, "अब मुझे इतना आरामदेह जीवन मिल गया है।" किन्तु पुनः वह बूढ़ा होता है और खीज उठता है। अतः कृष्ण इतने दयालु हैं कि वे कहते हैं, "ठीक, तुम अपना शरीरं बदल लो।" यह है *पुनः पुनश्चर्वितचर्वणानाम्*—चबाये हुए को चबाना। कृष्ण जीव को अनेक सुविधाएँ देते हैं, "लो, वृक्ष बन जाओ। लो, साँप बनो। लो, देवता बनो। लो, राजा बनो; मोची बनो। स्वर्ग जाओ, नरक जाओ।" अनेकानेक वैविध्यपूर्ण जीवयोनियाँ हैं, लेकिन इन सबों में जीव इसी भौतिक जगत में ठुँसा रहता है। वह स्वतन्त्रता की ताक में रहता है, किन्तु उसे यह ज्ञान नहीं रहता कि स्वतन्त्रता एकमात्र कृष्ण की शरण में मिल सकती है। इसे वह अपनायेगा नहीं।

इस भौतिक जगत के कष्ट को देखते हुए मायावादी (निर्विशेषवादी) जीवन को विविधताविहीन (निर्विशेष) बनाना चाहते हैं और बौद्ध-जन इसे शून्य बनाना चाहते हैं (शून्यवादी)। किन्तु इनमें से कोई भी प्रस्ताव सम्भव नहीं। आप कुछ काल तक विविधतारहित रह सकते हैं, लेकिन पुनः आप परिवर्तन चाहेंगे। बड़े बड़े संन्यासी *ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या* (ब्रह्म सत्य है, यह जगत झूठा है) का इतना प्रचार करते हैं, किन्तु वे पुनः राजनीतिक तथा सामाजिक कार्य करने के लिए ब्रह्म से बहुत नीचे चले आते हैं। वे दीर्घकाल तक ब्रह्म में नहीं रह सकते,

अतएव उन्हें यह भौतिक विविधता स्वीकार करनी पड़ती है, क्योंकि विविधता ही भोग की जननी है। इसलिए हमारा प्रस्ताव यह है : असली विविधता कृष्णभावनामृत—को प्राप्त होइये। तभी आपका जीवन सफल होगा।

शिष्य : अधिकांश लोग इस जीवन में इतना अधिक आनन्द लेने का प्रयास कर रहे हैं कि वे अगले जीवन के विषय में सोचते तक नहीं।

श्रील प्रभुपाद : वे नहीं जानते कि अगला जीवन क्या होगा; इसलिए वे इसे शून्य बना देते हैं। वे कहते हैं कि अगला जीवन होता ही नहीं और इस तरह वे संतुष्ट रहते हैं। जब खरगोश कोई खतरा देखता है, तो वह आँखें मूँद लेता है और सोचता है कि अब कोई खतरा नहीं है। ये मूढ़ उसी तरह हैं। यह निपट अज्ञान है।

शिष्य : एक प्रकार का दर्शन है, जो स्टोइकवाद (stoicism) कहलाता है, जिसके अनुसार यह जीवन कष्ट के लिए है, अतः मनुष्य को अत्यन्त बलिष्ठ बनना चाहिए और बहुत अधिक कष्ट भोगने चाहिए।

श्रील प्रभुपाद : तो उनका विचार है कि जो बिना किसी विरोध के कष्ट सह सकता है, वह उच्चकोटि का व्यक्ति है। ऐसे दर्शन में विश्वास करने का अर्थ यह होता है कि मनुष्य यह नहीं जानता कि कष्ट को कैसे रोका जा सकता है। दार्शनिकों का एक वर्ग कहता है कि चूँकि कष्टों को नकारा नहीं जा सकता, इसलिए हमें उन्हें सहने के लिए प्रबल होना चाहिए। दूसरे वर्ग के

दार्शनिक कहते हैं कि चूँकि जीवन कष्टमय है, अतः हमें जीवन को शून्य कर देना चाहिए। किन्तु इनमें से किसी भी वर्ग को यह जानकारी नहीं है कि ऐसा असली जीवन भी होता है, जिसमें कष्ट नहीं होता। यही कृष्णभावनामृत है। वहाँ जीवन तो है, किन्तु कष्ट नहीं होता। *आनन्दमयोऽभ्यासात्*—केवल आनन्द। नाचना, खाना तथा कीर्तन करना, लेकिन कोई कष्ट नहीं। क्या कोई इससे इनकार करेगा? क्या कोई है ऐसा मूर्ख?

शिष्य : लोग इनकार करते हैं कि ऐसा जीवन भी होता है।

श्रील प्रभुपाद : किन्तु कल्पना कीजिये कि ऐसा जीवन है, जहाँ आप केवल नाच, गा तथा अनन्त काल तक सुखपूर्वक रह सकते हैं। क्या आप इसे स्वीकार करना नहीं चाहेंगे?

शिष्य : इसे कोई भी स्वीकार करना चाहेगा। लेकिन लोग सोचते हैं कि इसका अस्तित्व नहीं है।

श्रील प्रभुपाद : इसलिए हमारा पहला सुझाव यह होना चाहिए कि इस तरह का जीवन है, जिसमें केवल सुख है, कष्ट तनिक भी नहीं है। हर व्यक्ति कहेगा "हाँ, मैं इसे चाहूँगा।" वे इसे स्वीकार करेंगे। दुर्भाग्यवश लोग बारम्बार ठगे जाते रहे हैं, इसलिए वे सोचते हैं कि यह एक और ठगी है। इसलिए कृष्णभावनामृत के प्रचार का अर्थ लोगों को यह आश्वस्त करना है कि सुख से भरापूरा जीवन भी है, जिसमें कष्ट नहीं है।

शिष्य : वे किस तरह आश्वस्त होंगे कि उन्हें हमारे द्वारा ठगा नहीं जा रहा?

श्रील प्रभुपाद : उन्हें हमारे मन्दिर में आने तथा हमारे भक्तों को

देखने के लिए आमंत्रित करें। हम सुन्दर ढंग से कीर्तन करते हैं, नाचते हैं और खाते हैं। यही व्यावहारिक प्रमाण है।

शिष्य : किन्तु क्या मनुष्य को इन वस्तुओं की अनुभूति होने के पूर्व शुद्ध नहीं होना होगा?

श्रील प्रभुपाद : नहीं। हम कहते हैं, "आओ और हमारे साथ हरे कृष्ण का कीर्तन करो। आप शुद्ध हो जाओगे। हम आपसे कुछ नहीं चाहते। हम आपको भोजन देंगे, हम आपको हर वस्तु देंगे। केवल आओ और हमारे साथ कीर्तन करो। बस।" यह हमारा संदेश है। •

१४

प्रौद्योगिकी तथा बेरोजगारी

यह वार्तालाप जून १९७४ में जेनेवा में श्रील प्रभुपाद तथा उनके शिष्यों में से एक के मध्य हुआ।

शिष्य : एक राजनेता ने भारत में अपने हाल के भाषण में कहा है कि ८०% भारतीय लोग गाँवों में रहते हैं। उसका प्रस्ताव था कि खेतों पर प्रौद्योगिकी को बढ़ावा दिया जाय। हाथ से गेहूँ की फसल काटने के बजाय लोगों के पास मोटरचालित हार्वेस्टर (फसल काटने वाले यन्त्र) होंगे और वे हल को बैलों से न खिंचवा कर ट्रैक्टर का इस्तेमाल करेंगे।

श्रील प्रभुपाद : भारत में पहले ही अनेक लोग बेरोजगार हैं, अतएव अधिक यन्त्रों का प्रयोग करना बहुत अच्छा प्रस्ताव नहीं है। यन्त्र पर कार्य करने वाला एक व्यक्ति सौ व्यक्तियों का कार्य कर सकता है। लेकिन इतने अधिक लोग बेरोजगार क्यों होने चाहिए? क्यों न एक व्यक्ति को काम में लगाने के बजाय सौ लोगों को लगाया जाय? यहाँ पश्चिम में भी काफी बेरोजगारी है। चूँकि आपके पश्चिमी देशों में हर काम यन्त्र से किया जाता है, इसलिए आप बहुत से हिप्पी यानी हताश नवयुवक उत्पन्न कर रहे हैं, जिनके पास करने को कुछ नहीं है। यह एक अन्य प्रकार

की बेरोजगारी है। अतः कई मामलों में यन्त्रों से बेरोजगारी उत्पन्न होती है।

हर व्यक्ति को रोजगार मिलना चाहिए; अन्यथा परेशानी होगी। खाली दिमाग शैतान का घर कहा गया है। जहाँ इतने सारे लोग बिना किसी काम के हों, वहाँ और अधिक बेरोजगारी पैदा करने के लिए हम यन्त्रों को क्यों लाएँ? सर्वोत्तम नीति यही है कि कोई भी व्यक्ति बेरोजगार न रहे; हर व्यक्ति काम में लगा हो।

शिष्य : लेकिन कोई तर्क कर सकता है, यन्त्र हमें काफी समय लेने वाले श्रम से मुक्त करता है।

श्रील प्रभुपाद : मुक्त किस काम के लिए करता है? शराब पीने तथा सभी प्रकार की बेहूदगी करने के लिए? इस स्वतन्त्रता का क्या अर्थ है? यदि आप कृष्णभावनामृत के अनुशीलन के लिए लोगों को मुक्त करते हों, तो बात दूसरी है। निस्सन्देह, जब कोई हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन में आता है, तो उसे भी पूरी तरह व्यस्त होना चाहिए। यह आन्दोलन खाने और सोने के लिए नहीं है, अपितु कृष्ण के लिए कार्य करने के निमित्त है। अतः चाहे यहाँ कृष्णभावनामृत में हो, या बाहर के समाज में, नीति यही होनी चाहिए कि हर व्यक्ति रोजगार में लगा हो तथा व्यस्त रहे। तब अच्छी सभ्यता होगी।

वैदिक सभ्यता में समाज के मुखिया का यह कर्तव्य था कि वह इस बात का ध्यान रखे कि हर व्यक्ति—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र—काम में लगा है। हर व्यक्ति को कार्य करना चाहिए; तभी शान्ति होगी। सम्प्रति हम देख सकते हैं कि इतनी

प्रौद्योगिकी के कारण बेरोजगारी ही बेरोजगारी है और अनेक आलसी लोग हैं। हिप्पीजन आलसी हैं। वे कुछ भी करना नहीं चाहते।

शिष्य : अन्य तर्क यह हो सकता है कि प्रौद्योगिकी से हम इतनी अच्छी तरह तथा इतनी अधिक दक्षता से कार्य कर सकते हैं, जिससे कार्य करने वालों की उत्पादकता बढ़ जाती है।

श्रील प्रभुपाद : अच्छा हो कि अधिक लोग रोजगार पाएँ चाहे वे कम दक्षतापूर्वक कार्य करें। *भगवद्गीता* (१८.४८) में कृष्ण कहते हैं—

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमअपि न त्यजेत्।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृता: ॥

"हर प्रयत्न किसी न किसी तरह की त्रुटि से ओतप्रोत रहता है, जिस तरह अग्नि धुएँ से प्रच्छन्न रहती है। इसलिए हे कुन्तीपुत्र, मनुष्य को चाहिए कि वह अपने स्वभाव से उत्पन्न कार्य को त्यागे नहीं, भले ही ऐसा कार्य त्रुटि से भरा हो।" हिन्दी में एक कहावत है, "बेकारी से बेगारी अच्छी है।" *बेकारी* का अर्थ है "बेरोजगारी" और *बेगारी* का अर्थ है "बिना वेतन के कार्य करना।" भारत में हमने देखा है कि कई ग्रामीण आकर किसी दुकानदार या किसी भद्र व्यक्ति से प्रार्थना करते हैं, "कृपया हमें कुछ काम दें। मुझे वेतन नहीं चाहिए। यदि आप चाहें तो मुझे खाने को कुछ दे दें, अन्यथा मुझे वह भी नहीं चाहिए।" अतः यदि आप किसी के पास काम करें तो ऐसा कौन भद्र व्यक्ति होगा, जो आपको खाने को भी कुछ न दे? काम कराने वाले को

तुरन्त ही भोजन तथा आश्रय के साथ कोई न कोई वृत्ति (पेशा) मिल जाती है। तत्पश्चात् जब वह काम करने लगता है, तो यदि वह भद्र व्यक्ति देखता है कि वह व्यक्ति बहुत अच्छा काम कर रहा है तो वह कहेगा, "ठीक, कुछ वेतन ले लो।" अतः बिना काम के आलसी बने रहने की अपेक्षा बिना पारिश्रमिक के काम करना श्रेष्ठ होगा। यह अति भयावह स्थिति है। लेकिन आधुनिक सभ्यता में अनेक यन्त्रों के होने से अनेकानेक बेरोजगार व्यक्ति हैं और अनेक आलसी भी हैं। यह अच्छा नहीं है।

शिष्य : अधिकांश लोग कहेंगे कि ये विचार बहुत पुराने ढर्रे के हैं। वे प्रौद्योगिकी का उपयोग करेंगे, भले ही इससे बेरोजगारी की दर क्यों न बढ़ जाय, क्योंकि वे इसे काहिली से छुटकारे का साधन तथा टेलीविजन, चलचित्र, आटोमोबाइल का आनंद लेने को स्वतन्त्रता का साधन मानते हैं।

श्रील प्रभुपाद : प्रौद्योगिकी स्वतन्त्रता नहीं है, प्रत्युत यह नरक जाने का खुला रास्ता है। यह स्वतन्त्रता नहीं है। हर एक को उसकी योग्यता के अनुसार काम में लगाया जाना चाहिए। यदि आपके पास अच्छी बुद्धि हो, तो आप ब्राह्मण का कार्य कर सकते हैं—शास्त्र का अध्ययन करने, पुस्तकें लिखने, दूसरों को ज्ञान प्रदान करने का कार्य कर सकते हैं। यही ब्राह्मण का कार्य है। आपको जीवन-यापन की चिन्ता नहीं करनी होगी। इसे समाज पूरा करेगा। वैदिक सभ्यता में ब्राह्मण वेतन के लिए कार्य नहीं करते थे। वे वैदिक वाङ्मय का अध्ययन करने तथा दूसरों को शिक्षा देने में लगे रहते थे और समाज उन्हें भोजन देता था।

जहाँ तक क्षत्रियों की बात है, उन्हें समाज के अन्य सदस्यों को संरक्षण प्रदान करना चाहिए। जब संकट आएगा, जब कोई आक्रमण होगा, तब लोगों की रक्षा क्षत्रिय ही करेंगे। इसके लिए वे कर लगा सकते हैं। फिर जो लोग क्षत्रियों से कम बुद्धिमान हैं, वे वैश्य अर्थात् व्यापारी वर्ग के हैं, जो अन्न उत्पन्न करने तथा गौवों को संरक्षण प्रदान करने में लगे रहते हैं। इन वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है। अन्त में शूद्र आते हैं, जो इन तीन उच्च वर्गों की सहायता करते हैं।

यह समाज का प्राकृतिक विभाजन है और यह अति उत्तम है, क्योंकि इसे स्वयं कृष्ण ने रचा था (*चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं*)। हर व्यक्ति कार्यरत रहता है। बुद्धिमान वर्ग को कार्य मिला हुआ है, सैनिक वर्ग को तथा व्यापारी वर्ग को कार्य मिला हुआ होता है और शूद्र भी कार्य में लगे रहते हैं। राजनीतिक दल बनाने और लड़ने-झगड़ने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। वैदिक काल में यह सब नहीं होता था। राजा निरीक्षक होता था, जो देखता था कि हर कोई अपने-अपने कार्य में लगा रहे। अतः लोगों के पास झूठे राजनीतिक दल बनाने, संघर्ष चलाने तथा एक दूसरे से लड़ने-झगड़ने के लिए समय नहीं था। ऐसा कोई अवसर नहीं मिलता था।

लेकिन हर वस्तु की शुरुआत यह समझने में है कि, "मैं यह शरीर नहीं हूँ" और *भगवद्गीता* में कृष्ण ने इस पर बारम्बार बल दिया है। •

१५

विज्ञान तथा आस्था

यह वार्तालाप मई १९७५ में पर्थ (आस्ट्रेलिया) में प्रातःकालीन भ्रमण के समय श्रील प्रभुपाद तथा उनके शिष्यों में से एक के बीच हुआ था।

शिष्य : (एक भौतिकतावादी विज्ञानी की भूमिका निभाते हुए) आप कृष्णभावनामृत को विज्ञान क्यों कहते हैं? ऐसा लगता है कि यह केवल आस्था है।

श्रील प्रभुपाद : तुम्हारा तथाकथित विज्ञान भी आस्था है। यदि तुम अपने रंग-ढंग को विज्ञान कहते हो, तो हमारा रंग-ढंग भी विज्ञान है।

शिष्य : किन्तु हम अपने विज्ञान से अपनी आस्थाओं को सिद्ध कर सकते हैं।

श्रील प्रभुपाद : तब यह सिद्ध करो कि रसायनों से जीवन बनता है। तुम्हारा विश्वास है कि जीवन रसायनों से बना है। तो इसे सिद्ध करो। तभी यह विज्ञान है। किन्तु तुम इसे सिद्ध नहीं कर सकते; इसलिए यह आस्था बना रहता है।

शिष्य : ठीक है। आप तो आत्मा में विश्वास करते हैं, किन्तु आप यह सिद्ध नहीं कर सकते कि इसका अस्तित्व है। चूँकि हम

आत्मा को देख नहीं सकते, अतः हमें यह निष्कर्ष निकालना पड़ता है कि जीवन की उत्पत्ति पदार्थ से होती है।

श्रील प्रभुपाद : तुम अपनी स्थूल इन्द्रियों से आत्मा को नहीं देख सकते, लेकिन इसकी अनुभूति की जा सकती है। चेतना की अनुभूति की जा सकती है और चेतना आत्मा का लक्षण है। किन्तु जैसाकि तुम कहते हो, यदि जीवन की उत्पत्ति पदार्थ से होती है, तो तुम्हें मृत शरीर को पुनः जीवित करने के लिए लुप्त रसायनों की पूर्ति करके इसे प्रदर्शित करना चाहिए। यही मेरी चुनौती है।

शिष्य : उपयुक्त रसायनों की खोज करने में कुछ समय लगेगा।

श्रील प्रभुपाद : इसका अर्थ यह है कि तुम बकवास कर रहे हो। तुम्हारा विश्वास यह है कि जीवन रसायनों से उत्पन्न होता है, किन्तु तुम इसे सिद्ध नहीं कर सकते। इसलिए तुम अपने आपको मूढ़ सिद्ध कर रहे हो।

शिष्य : लेकिन आप *भगवद्गीता* को श्रद्धावश स्वीकार करते हैं। यह विज्ञानसम्मत कैसे है? यह तो केवल आपकी आस्था है। क्या यह सही नहीं है?

श्रील प्रभुपाद : यह वैज्ञानिक कैसे नहीं है? *भगवद्गीता* कहती है—*अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्याद् अन्न सम्भवः*—सारे जीव पर्याप्त अन्न खाकर जीवित रहते हैं और अन्न वर्षा से उत्पन्न होता है। क्या यह आस्था है?

शिष्य : यह तो सत्य होना चाहिए।

श्रील प्रभुपाद : इसी तरह *भगवद्गीता* की हर बात सत्य है।

यदि इसके विषय में ध्यानपूर्वक सोचा जाय, तो पता चलेगा कि इसकी सारी बातें सच हैं। *भगवद्गीता* में कृष्ण कहते हैं कि समाज में मनुष्यों का एक बुद्धिमान वर्ग, ब्राह्मण, होना चाहिए, जो आत्मा तथा ईश्वर को जानता हो। यह सभ्य पुरुष है। किन्तु आज के समाज में मनुष्यों का ऐसा वर्ग कहाँ है?

शिष्य : रब्बी, पादरी तथा याजक तो बहुत सारे हैं।

श्रील प्रभुपाद : किन्तु वे ईश्वर के विषय में क्या जानते हैं? इस एक बात को ही ठीक से समझने का प्रयास करो। एक परम सत्ता है। तुम स्वतन्त्र नहीं हो, इसलिए तुम्हें स्वीकार करना होगा कि कोई परम सत्ता है। किन्तु तुम जानते नहीं कि यह परम सत्ता कौन है? किन्तु यदि तुम परम सत्ता को नहीं जानते, तो तुम्हारे ज्ञान से क्या लाभ?

मान लो कि कोई व्यक्ति अपने देश की सरकार के बारे में नहीं जानता। तो वह किस तरह का व्यक्ति है? वह मात्र तृतीय श्रेणी का व्यक्ति है, मूढ़ है। एक सभ्य व्यक्ति अपने देश की सरकार के विषय में जानता है। इसी तरह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की एक सरकार है, लेकिन यदि कोई इसे न जाने, तो वह तृतीय श्रेणी का असभ्य व्यक्ति है। इसलिए भगवान् कृष्ण *भगवद्गीता* में शिक्षा देते हैं कि मानव समाज में बुद्धिमान व्यक्तियों का एक ऐसा वर्ग होना चाहिए, जो ईश्वर को जानता हो तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की व्यवस्था को समझता हो कि यह किस तरह ईश्वर के आदेश से चलता है। हम कृष्णभावनाभावित भक्त ये सारी बातें जानते हैं। अतएव हम सभ्य हैं।

शिष्य : लेकिन *भगवद्गीता* तो पाँच हजार वर्ष पहले लिखी गई थी, अतः यह आज लागू नहीं होती है।

श्रील प्रभुपाद : *भगवद्गीता* पाँच हजार वर्ष पूर्व नहीं लिखी गई। यह पहले से थी। यह सदैव विद्यमान रही है। क्या तुम *भगवद्गीता* पढ़ते हो?

शिष्य : हाँ।

श्रील प्रभुपाद : तो तुम्हें *भगवद्गीता* में यह कहाँ मिलता है कि यह पाँच हजार वर्ष पूर्व लिखी गई? यह तो सर्वप्रथम १२ करोड़ वर्ष पूर्व कही गई थी। कृष्ण कहते हैं—*इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवान् अहमव्ययम्*—"मैंने इस विज्ञान को १२ करोड़ वर्ष पूर्व से भी पहले विवस्वान को बताया था।" तुम इसे नहीं जानते क्या? तुम *भगवद्गीता* के कैसे पाठक हो? *भगवद्गीता अव्ययम्* है—यह सदा से विद्यमान रही है। तो तुम यह कैसे कह सकते हो कि यह पाँच हजार वर्ष पूर्व लिखी गई थी?

(श्रील प्रभुपाद अपनी छड़ी से उदय होते सूर्य को दिखाते हैं) यहाँ हम देख रहे हैं कि सूर्य अभी-अभी उदय हो रहा है, किन्तु अन्तरिक्ष में यह सदैव रहता है। *भगवद्गीता* ऐसी ही है। यह शाश्वत सत्य है। जब सूर्य उदय हो रहा हो, तो हम यह नहीं कहते कि यह अभी अस्तित्व में आ रहा है। यह सदैव रहता है, किन्तु जब तक यह उदय नहीं होता, हम इसे देख नहीं सकते। लोग सोचते थे कि सूर्य रात्रि में मर जाता है और प्रातःकाल नया सूर्य उत्पन्न होता है। वे यह भी विश्वास करते थे कि पृथ्वी सपाट है। यह है तुम्हारा वैज्ञानिक ज्ञान—नित नये नये मत।

शिष्य : इसका अर्थ यह है कि हम सत्य का उद्घाटन कर रहे हैं।

श्रील प्रभुपाद : नहीं। इसका अर्थ यह है कि तुम लोग यह नहीं जानते कि सत्य क्या है। तुम लोग केवल अनुमान लगाते हो। आज तुम किसी एक वस्तु को सत्य मानते हो, किन्तु कुछ दिन बाद कहते हो कि यह सच नहीं है। और इसे तुम विज्ञान कहते हो!

शिष्य : जी हाँ, आप ठीक कहते हैं। अनेक वैज्ञानिक पुस्तकें, जो कुछ वर्ष पूर्व लिखी गई थीं, अप्रासंगिक हो गई हैं।

श्रील प्रभुपाद : और अभी तुम जिन वैज्ञानिक पुस्तकों का उपयोग कर रहे हो, वे कुछ वर्षों में व्यर्थ हो जाएँगी। यही तुम्हारा विज्ञान है।

शिष्य : किन्तु इतना तो है कि हम आज जो कुछ जानते हैं, वह पहले की अपेक्षा अधिक सच है और यदि हम इसी तरह प्रयास करते रहें, तो और अधिक जान सकेंगे।

श्रील प्रभुपाद : इसका अर्थ यह है कि तुम लोग सदैव अज्ञान में रहते हो। लेकिन *भगवद्गीता* ऐसी नहीं है। कृष्ण अर्जुन से कहते हैं, "मैंने सर्वप्रथम १२ करोड़ वर्ष पूर्व इस विज्ञान का उपदेश दिया और आज तुम्हें उसी की शिक्षा दे रहा हूँ। यह है वैज्ञानिक ज्ञान। सत्य तो सदैव वही रहता है, किन्तु तुम विज्ञानी लोग सदैव बदलते रहते हो। इसे तुम "सत्य की खोज" कहते हो। इसका अर्थ यह है कि तुम यही नहीं जानते कि सत्य क्या है।"

शिष्य : (अपने आप) समस्या यह है कि हर कोई ठग है। हर व्यक्ति अनुमान लगा रहा है और अपने ही ज्ञान को सत्य के रूप में प्रस्तुत कर रहा है।

श्रील प्रभुपाद : हाँ, इसीलिए हमने कृष्ण को स्वीकार किया है, क्योंकि वे ऐसे पुरुष हैं, जो ठगते नहीं। और चूँकि मैं वही प्रस्तुत करता हूँ, जो कृष्ण ने कहा है, इसलिए मैं भी ठग नहीं हूँ। हममें तथा विज्ञानियों में यही अन्तर है। •

१६

शिक्षा तथा उत्तम जीवन

यह वार्तालाप जुलाई १९७३ में राधा–कृष्ण मन्दिर, लन्दन में श्रील प्रभुपाद, एक नये भक्त की माता तथा जेसुइट पादरी के बीच हुआ था।

श्रील प्रभुपाद (भक्त की माता से) : हमारे वैदिक ज्ञान के अनुसार पापी जीवन के चार पाये होते हैं—अवैध यौन, व्यर्थ पशु हत्या, नशा करना तथा जुआ खेलना। हमारे अनुयायीओं को इनका परित्याग करने के लिए प्रशिक्षित किया गया है। आप अपने पुत्र से ही देख सकती हैं कि वे सब सुखी हैं और शाक तथा दूध से बना उत्तम भोजन खाकर एवं हरे कृष्ण अर्थात् ईश्वर के पवित्र नाम का कीर्तन करके सन्तुष्ट हैं।

माता : हाँ, मैं देख रही हूँ कि वह प्रसन्न है। लेकिन आप जानते हैं कि वह अत्यन्त सुखी परिवार का है, अतः उसे सुखी होना ही चाहिए। है न?

श्रील प्रभुपाद : हाँ, लेकिन अब वह अधिक सुखी है। वह सुखी था, लेकिन अब अधिक सुखी है।

माता : मैं माइकल के सुख से सुखी हूँ, लेकिन मुझे बड़ी निराशा है कि वह अपनी विश्वविद्यालय की शिक्षा को चालू नहीं रख

रहा।

श्रील प्रभुपाद : हमारा कृष्णभावनामृत आन्दोलन लोगों को उनकी शिक्षा से वंचित नहीं कर रहा। हम कहते हैं, "आपकी विश्वविद्यालय की शिक्षा जारी रखो, किन्तु साथ ही साथ ईश्वर को जानने तथा उनसे प्रेम करने में दक्ष बनो। तब तुम्हारा जीवन पूर्ण होगा।"

जो भी हो, आखिर शिक्षा का प्रयोजन क्या है? हमारी वैदिक सभ्यता बताती है कि शिक्षा की परिणति ईश्वर को जान लेना है। यही शिक्षा है। अन्यथा किस तरह ठीक से खाया, सोया, संभोग तथा आत्मरक्षा की जाय—इसे सीखने की शिक्षा तो पशुओं में भी है। पशु भी जानते हैं कि किस तरह खाना, सोना, संभोग करना तथा अपना संरक्षण करना चाहिए। मनुष्यों के लिए शिक्षा की ये चार शाखाएँ पर्याप्त नहीं हैं। मनुष्य को तो यह जानना चाहिए कि ईश्वर से किस तरह प्रेम किया जाय। यही पूर्णता है।

माता : हाँ। मैं आपसे पूरी तरह सहमत हूँ। मैं ऐसे अनेक विद्वान विज्ञानियों के नाम ले सकती हूँ, जो अब भी ईश्वर के अति निकट हैं। हम अपने विज्ञानियों, डाक्टरों के बिना कहाँ होते...

श्रील प्रभुपाद : किन्तु चिकित्सा विज्ञान में मात्र डाक्टर बन जाने से कोई बच नहीं सकेगा। दुर्भाग्यवश, अधिकांश डाक्टर अगले जीवन में विश्वास नहीं करते।

माता : अरे हाँ, वे विश्वास करते हैं। मैं एक डाक्टर को जानती हूँ, जो प्रत्येक रविवार को गिरजाघर आता है और माइकल भी

उसे जानता है। वह अगले जन्म में विश्वास करता है। वह बहुत

नेक आदमी है।

श्रील प्रभुपाद : सामान्यतः पश्चिम के वे लोग जो अगले जीवन में विश्वास करते हैं, वे इसके विषय में गम्भीर नहीं होते। यदि वे सचमुच अगले जीवन में विश्वास करते होते, तो वे इसके विषय में अधिक चिन्तित होते कि उन्हें किस प्रकार का अगला जीवन प्राप्त होगा। जीवन के ८४,००,००० रूप हैं। वृक्ष, कुत्ते, बिल्ली तथा मल के कीट भी जीवन के प्रकार हैं। इस तरह कुल मिलाकर ८४,००,००० योनियाँ हैं। चूँकि हमें अगला जीवन मिलेगा, चूँकि हम अपने वर्तमान शरीर को त्याग कर अन्य शरीर धारण करेंगे, अतएव हमारी मुख्य चिन्ता यह होनी चाहिए कि हमें किस तरह का भावी शरीर प्राप्त होगा। किन्तु ऐसा विश्वविद्यालय कहाँ है, जो छात्रों को अगले जीवन की तैयारी करने की शिक्षा देता हो?

पादरी : इसे विश्वभर के कैथोलिक विश्वविद्यालय सम्पन्न कर रहे हैं और यही हमारा मुख्य उद्देश्य है—इस जगत में युवकों या युवतियों को सफलता की शिक्षा देना। किन्तु इससे भी बढ़कर अगले जगत में सफलता पाना, जिसका अर्थ है अमरता के लिए ईश्वर से मिलन। यही सर्वोच्च प्राथमिकता है।

श्रील प्रभुपाद : तो हम कैसे जान सकते हैं कि अगले जीवन में हमें किस प्रकार का शरीर प्राप्त होगा?

पादरी : मैं इतना ही जानता हूँ कि प्रलय नहीं होनी है। मैं तो ईश्वर से मिलने जा रहा हूँ।

माता : हम परमेश्वर से मिलने जा रहे हैं। बस! मरने पर हम

परमेश्वर के पास जाएँगे। हमें किसी तरह की चिन्ता नहीं करनी है।

श्रील प्रभुपाद : लेकिन ईश्वर के पास जाने के लिए योग्यता क्या है? क्या हर व्यक्ति ईश्वर के पास जाता है?

माता तथा पादरी : हाँ, हर एक।

पादरी : वह हर व्यक्ति जो ईश्वर में विश्वास रखता हो तथा अच्छा जीवन बिताता हो और इस जगत में अच्छे से अच्छा कार्य करता हो...

श्रील प्रभुपाद : तो अगला प्रश्न है—अच्छा जीवन क्या है?

पादरी : ईश्वर के आदेशों का पालन करना।

श्रील प्रभुपाद : इनमें से एक आदेश है—"तू वध नहीं करेगा।" यदि कोई दीन-हीन पशुओं का वध करके उन्हें खाता है, तो क्या वह अच्छा जीवन बिताता है?

पादरी : स्वामीजी, यह थोड़ा अनुचित लगता है। "तू वध नहीं करेगा" का अर्थ है, "तू व्यर्थ ही किसी का जीवन नहीं लेगा।" यदि हम मांस न खायँ तो जीवित कैसे रहेंगे?

श्रील प्रभुपाद : हम कैसे रह रहे हैं? हम शाक, अन्न, फल तथा दूध से तैयार किया हुआ उत्तम भोजन खा रहे हैं। हमें मांस की आवश्यकता नहीं है।

पादरी : इसे इस प्रकार देखिए। कुछ क्षण पहले ही आपने अभी कहा था कि जीवन की ८० लाख के लगभग योनियाँ हैं। क्या आप सहमत हैं कि आलू, गोभी तथा दूसरी शाक-सब्जियों में भी जीवन है?

श्रील प्रभुपाद : हाँ।

पादरी : अतः जब इन शाकों को उबाला जाता है, तो आप उनका प्राण हर लेते हैं।

श्रील प्रभुपाद : आपका दर्शन क्या है—क्या आलू को मारना तथा एक दीन-हीन पशु को मारना एक समान है?

पादरी : आपने कहा कि "तू वध नहीं करेगा,' किन्तु आप आलू का वध करते हैं।

श्रील प्रभुपाद : हम सबों को अन्य जीवों को खाकर जीवित रहना होता है—*जीवो जीवस्य जीवनम्।* लेकिन आलू खाना तथा किसी पशु को खाना एक-सा नहीं है। क्या आप सोचते हैं कि वे एक समान हैं?

पादरी : हाँ।

श्रील प्रभुपाद : तो आप किसी बच्चे को मार कर क्यों नहीं खा जाते?

पादरी : मैं बच्चे को मारने की सोच भी नहीं सकता।

श्रील प्रभुपाद : किन्तु पशु तथा बच्चे इस बात में एक-से हैं कि दोनों ही असहाय तथा अज्ञानी होते हैं। बच्चा अज्ञानी है तो इसका अर्थ यह तो नहीं कि हम उसे मार डालें। इसी तरह भले ही पशु अज्ञानी या मूर्ख हों, हमें व्यर्थ ही उनका वध नहीं करना चाहिए। सही धार्मिक मनुष्य को अन्तर करना होगा। उसे सोचना चाहिए, "यदि मुझे शाक, फल तथा दूध से अपना भोजन मिल जाय, तो पशुओं को क्यों मारूँ और खाऊँ?" इतना ही नहीं, जब

आपको वृक्ष से फल प्राप्त होता है, तब इसमें कोई हत्या नहीं

होती। इसी तरह जब हम गाय दुहते हैं, तो हम गाय को मारते नहीं। अतः यदि हम बिना वध किये इस तरह से रह सकें, तो हम पशुओं का वध क्यों करें?

पादरी : क्या आप कहेंगे कि चूँकि मैं मांस तथा सुअर-मांस खाता हूँ, इसलिए मैं पापी बनता हूँ? क्या यदि मैं उन्हें न खाता, तो कम पापी होता?

श्रील प्रभुपाद : हाँ।

पादरी : यदि मैं मांस, सुअर-मांस तथा सॉसेज खाना बन्द कर दूँ, तो क्या मैं भिन्न व्यक्ति बन जाऊँगा?

श्रील प्रभुपाद : आप शुद्ध बन जाएँगे।

पादरी : यह तो दिलचस्प बात है।

श्रील प्रभुपाद : पशु का वध करने वाले ईश्वर को नहीं समझ सकते। मैंने यह देखा है और यंह तथ्य है। ईश्वर को समझने के लिए उनके बुद्धि नहीं होती। •

१७

गर्भपात तथा 'शशक दर्शन'

कैलीफोर्निया के वेनिस तट पर दिसम्बर १९७३ में प्रातःकालीन भ्रमण के समय श्रील प्रभुपाद तथा उनके कतिपय शिष्यों के मध्य हुई बातचीत।

शिष्य : श्रील प्रभुपाद, कभी-कभी हम यह तर्क करते हैं कि यद्यपि प्रकृति के नियम अत्यन्त प्रबल है, किन्तु यदि हम श्रीकृष्ण की शरण में चले जाँय, तो रोग तथा मृत्यु जैसी घटनाओं पर विजय पा सकते हैं, क्योंकि वे प्रकृति के नियंता हैं। किन्तु संशयवादी कहते हैं कि ईश्वर के बिना ही हम अपने आप प्रकृति के नियमों पर क्रमशः नियन्त्रण कर लेंगे।

श्रील प्रभुपाद : नहीं। हमें बाध्य होकर प्रकृति के नियम स्वीकार करने पड़ते हैं। कोई यह कैसे कह सकता है कि उसने प्रकृति के नियमों पर विजय पा ली है?

शिष्य : किन्तु डाक्टरों तथा जीव-विज्ञानियों ने अनेकानेक रोगों पर विजय पा ली है।

श्रील प्रभुपाद : फिर भी लोग रोगग्रस्त होते हैं। डाक्टरों ने किस तरह रोगों को रोका है?

शिष्य : उदाहरणार्थ, अफ्रीका तथा भारत में वे हर एक के माता

(चेचक) के टीके लगा रहे हैं और उन्होंने हजारों बच्चों को मरने से बचा लिया है।

श्रील प्रभुपाद : लेकिन बच्चे बड़े होंगे और वृद्ध होकर अन्त में मरेंगे ही; अतः मृत्यु को रोका नहीं जा सका है। और तो और, वे इन बच्चों के विषय में चिन्तित क्यों हैं? वे अधिक आबादी नहीं चाहते इसलिए युक्तियुक्त तो यह होगा कि डाक्टर उन्हें मरने दें। लेकिन डाक्टर लोग युक्तियुक्त नहीं हैं। एक ओर वे बच्चों की मृत्यु रोकना चाहते हैं और दूसरी ओर गर्भनिरोधकों के उपयोग की संस्तुति करते हैं और गर्भपात द्वारा बच्चों को गर्भ में ही मार डालते हैं। क्यों? वे यह वध क्यों कर रहे हैं? यही न कि जनसंख्या न बढ़े। तो फिर जब विश्व के किसी अन्य भाग में बच्चे मर रहे होते हैं, तो वे उन्हें बचाने के लिए उत्सुक क्यों हैं?

शिष्य : एक बार बच्चा उत्पन्न हो जाता है, तो वे उसे बचाना चाहते हैं। किन्तु जब बच्चा गर्भ में ही रहता है, तो उन्हें लगता है कि वे उसे मार सकते हैं। वे कहते हैं कि अभी वह मानव प्राणी नहीं बना।

श्रील प्रभुपाद : किन्तु स्त्री ज्योंही गर्भवती होती है, बच्चा उत्पन्न हो चुका होता है। गर्भधारण करने का अर्थ है कि बच्चा उत्पन्न हो चुका है। वे यह कैसे कह सकते हैं कि बच्चा नहीं है? यह कैसी बेहूदगी है? जब स्त्री गर्भवती होती है, तो फिर आप क्यों कहते हैं कि वह "बच्चे सहित" है? इसका अर्थ यह है कि बच्चा उत्पन्न हो चुका होता है। इसलिए मैं कहता हूँ कि गर्भपात का यह धंधा निरी धूर्तता है।

शिष्य : उन्होंने इसको तर्कसंगत बना दिया है।

श्रील प्रभुपाद : सो कैसे?

शिष्य : कभी-कभी वे कहते हैं कि उन्हें जो सबसे अच्छा लगता है वे वही करते हैं। वस्तुतः वे इनसे ही इनकार करते हैं कि कर्म जैसी कोई वस्तु है, जो उन्हें बाद में दण्डित कर सकती है। ऐसा लगता है कि उनमें एक प्रकार का 'शशक दर्शन' है। जब ख़रगोश अपनी आँखें बन्द कर लेता है, तो वह अपनी ओर झपटते भेड़िये को नहीं देखता। वह वास्तव में यह सोचता हो कि वह सुरक्षित है।

श्रील प्रभुपाद : तो ये गर्भपात समर्थक 'शशक दर्शन' में विश्वास करते हैं। यह मनुष्यों का दर्शन नहीं है। यह तो खरगोश का दर्शन है, दादुर दर्शन है, गर्दभ दर्शन है। और इनका वर्णन *श्रीमद्भागवत* (२.३.१९) में हुआ है—*श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः* /वे नेता, जो प्रायः गर्भपात का समर्थन करते हैं, धूर्त हैं और वे अन्य मूर्खों तथा धूर्तों के समूह द्वारा यानी सामान्यजनों द्वारा प्रशंसित होते हैं। चूँकि सारी जनसंख्या धूर्तों से भरी है, इसलिए वे किसी धूर्त को ही नेता चुनते हैं। और फिर उससे असन्तुष्ट होने पर उसे पद-च्युत करके किसी अन्य धूर्त को चुनते हैं। इसे ही *पुनः पुनश्चर्वितचर्वणानाम्* अर्थात् चबाये को पुनः चबाना कहते हैं। लोग यह नहीं जानते कि किसे चुना जाए। इसलिए उन्हें शिक्षा दी जानी जाहिए कि वे ऐसा नेता चुनें जो ईशभावनाभावित हो, जो वास्तव में अगुवा होने के योग्य हो। तभी वे सुखी हो सकेंगे। अन्यथा वे एक धूर्त को चुनेंगे और फिर

उसको अस्वीकृत करके दूसरे धूर्त को चुनेंगे और उसको भी छोड़ेंगे। यही चलता रहेगा।

अमरीका में एक नारा है, "ईश्वर में हम विश्वास करते हैं।" हम तो इतना ही कहते हैं कि नेता का मानदण्ड यह होना चाहिये कि वह वास्इतव में जाने कि ईश्वर कौन है और वह उस पर विश्वास करे। और यदि लोग वास्तव में यह जानना चाहें कि ईश्वर कौन हैं, तो वे *भगवद्गीता* पढ़ सकते हैं। वे इसे बुद्धिमानी से पढ़ें और समझने का प्रयास करें और उससे भी आगे प्रगति करने के लिए वे *श्रीमद्भागवत* का अध्ययन कर सकते हैं। हम कोई सिद्धान्त नहीं गढ़ रहे हैं। हम ईश्वर विषयक अपना ज्ञान प्रामाणिक ग्रंथों से प्राप्त करते हैं।

शिष्य : राजनीति विषयक अपने पर्चों में हम नेता की योग्यताओं की सूची देते हैं। हम कहते हैं कि सर्वप्रथम उसे चार नियामक अनुष्ठानों का—मांसाहार न करने, अवैध मैथुन न करने, जुआ न खेलने तथा नशा न करने का—पालन करना चाहिए। और इनसे भी बढ़कर हम जो एक सकारात्मक आदेश देते हैं वह यह है कि नेता भगवान् के पवित्र नाम का कीर्तन करे। लेकिन कोई यह तर्क कर सकता है कि ये आवश्यकताएँ गिरजाघर तथा राज्य को पृथक् करने वाले संवैधानिक सिद्धान्त का उल्लंघन करती हैं।

श्रील प्रभुपाद : यदि आपको ईश्वर में विश्वास है, तो ईश्वर के पवित्र नाम का कीर्तन करने में आपको कोई आपत्ति क्यों हो? यदि आप कहते हैं, "ईश्वर में हम विश्वास करते हैं," तो आपको ईश्वर का नाम तथा पता ज्ञात होना चाहिए। तभी आप ईश्वर में

ठीक से विश्वास कर सकते हैं। और यदि आप इन बातों को नहीं जानते, तो हमसे सीखिये। हम आपको ईश्वर का नाम, पता, गुण—सब कुछ दे रहे हैं। और यदि आप यह कहते हैं कि ईश्वर नहीं है, तो फिर "ईश्वर में हम विश्वास करते हैं," का अर्थ ही क्या रहा?

शिष्य : उन्होंने गिरजाघर तथा राज्य को पृथक् करने की विज्ञापनबाजी कर रखी है, लेकिन उन्होंने ईश्वर तथा देश को भी पृथक् कर दिया है।

श्रील प्रभुपाद : जो ऐसी विज्ञापनबाजी करते हैं, वे यह नहीं समझते कि ईश्वर क्या हैं। ईश्वर को किसी भी वस्तु से पृथक् नहीं किये जा सकते, क्योंकि हर वस्तु ईश्वर है (*मया ततम् इदं सर्वं*)। यदि वे *भगवद्गीता* पढ़ें तो वे समझ सकेंगे कि ईश्वर सर्वत्र उपस्थित हैं। उनसे किसी भी वस्तु को पृथक् करना सम्भव नहीं है। जिस तरह तुम्हारी चेतना तुम्हारे शरीर के हर अंग में उपस्थित है, उसी तरह परम चेतना यानी ईश्वर ब्रह्माण्ड में सर्वत्र उपस्थित हैं। कृष्ण कहते हैं—*वेदाहं समतीतानि*—"जो कुछ घट चुका है उसे मैं जानता हूँ।" जब तक वे सर्वत्र न हों, वे हर वस्तु को कैसे जान सकते हैं? तुम क्या कहते हो?

शिष्य : श्रील प्रभुपाद, यह तर्कसंगत है।

श्रील प्रभुपाद : आप ईश्वर को सरकार से कैसे पृथक् कर सकते हैं? आप किसी भी ऐसे तथाकथित गिरजाघर, किसी भी ऐसे तथाकथित धर्म को बहिष्कृत कर सकते हैं, जो इस बात से सहमत होता है कि "ईश्वर तथा राज्य को पृथक् होना चाहिए।"

यही ईश्वर का आदेश है कि हम ऐसे तथाकथित धर्मों का बहिष्कार करें। *भगवद्गीता* (१८.६६) में कृष्ण कहते हैं—"*सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज*—सभी प्रकार के तथाकथित धर्मों का परित्याग करो और मात्र मेरी शरण में आओ।" लोग यह कह सकते हैं कि वे ईश्वर में विश्वास करते हैं, किन्तु जब वे ईश्वर को सरकार से पृथक् करना चाहते हैं, तब आप जान सकते हैं कि वे यह भी नहीं जानते कि ईश्वर क्या है। ●

१८

जिसकी लाठी उसकी भैंस

यह वार्तालाप जून १९७४ में पेरिस में श्रील प्रभुपाद तथा उनके शिष्यों में से एक के मध्य हुआ।

शिष्य : पिछली रात आपने अपने भाषण में यह उपमा दी थी कि यदि लोग ईश्वर के नियमों का पालन नहीं करते, तो वे ईश्वर द्वारा उसी तरह दण्डित किये जाएँगे, जिस तरह राज्य के नियमों की अवज्ञा करने पर दण्डित होना पड़ता है। इसलिए नौजवानों ने समझा कि आप अवश्य *फासिस्ट* (असाम्यवादी) होंगे।

श्रील प्रभुपाद : किन्तु वास्तव में सारे विश्व में यही हो रहा है। वे इससे इनकार कैसे कर सकते हैं ? आज सरकार का अर्थ है, "जिसकी लाठी उसकी भैंस।" किसी तरह सत्ता हथिया लो, तो फिर तुम ही सही हो। प्रश्न इसका है कि कौन सा पक्ष यह सत्ता हथिया पाता है।

शिष्य : लेकिन वे तो लोगों को सत्ता देना चाहते हैं।

श्रील प्रभुपाद : यह कैसे सम्भव होगा ? लोग अनेक हैं और मत अनेक प्रकार के हैं—तुम्हारे पास तुम्हारे अपने लोग हैं और किसी दूसरे के पास उसके अपने लोग हैं। ज्योंही आप अपने लोगों को सत्ता देना चाहेंगे; अन्य लोग विरोध करेंगे। यह मनुष्य

का स्वभाव है। इसे तुम बदल नहीं सकते। वे सोचते हैं कि सत्ता लोगों को दी जानी चाहिए, लेकिन ऐसे बहुत से अन्य लोग हैं, जो इससे असहमत होंगे। यह भौतिक जगत का स्वभाव है कि हर व्यक्ति अन्य व्यक्ति से ईर्ष्या रखता है। लेंकिन इन मूढ़ों में इतनी भी बुद्धि नहीं है कि इसे समझें। भारत में एक बहुत भद्र व्यक्ति, बहुत ही उत्तम राजनीतिक व्यक्ति गांधी थे, किन्तु लोगों ने उन्हें मार डाला। तो आप इसे रोक नहीं सकते। यह तो भौतिक जगत का स्वभाव है कि लोग एक दूसरे से ईर्ष्या करते हैं। आपको ऐसा भौतिकतावादी वर्ग नहीं मिल पाएगा, जो पूर्ण हो। तो फिर वे यह क्यों कहते हैं, "लोगों को सत्ता दो?" वे निरे धूर्त हैं।

इसीलिए *श्रीमद्भागवत* में कहा है, *परमो निर्मत्सराणां सतां*—कृष्णभावनामृत ऐसे लोगों के लिए है, जो पूर्ण हैं तथा ईर्ष्याविहीन हैं। जो कृष्णभावनाभावित नहीं हैं, वे ईर्ष्यालु होंगे ही। स्पर्धा सर्वत्र मिल जाएगी। कृष्ण के शत्रु थे। ईसा मसीह के शत्रु थे, अन्यथा उन्हें क्रूस पर क्यों चढ़ाया जाता? उनमें कोई दोष न था, वे तो ईशभावनामृत का प्रचार कर रहे थे। फिर भी उन्हें क्रूस पर चढ़ा दिया गया। यह है भौतिक जगत। पूर्ण होते हुए भी मनुष्य के शत्रु होते हैं। आप इसे रोक भी कैसे सकते हैं? वे कहते हैं, "सत्ता लोगों को दो," किन्तु ज्योंही कोई अच्छा वर्ग शासन करने लगता है, तो कोई दूसरा दल उसका विरोध करता है। वे कहेंगे "सत्ता हमें दो।" तो फिर पूर्णता कहाँ रही? यह पूर्णता नहीं है। इसलिए हमें इस भौतिक जगत से सारे

सम्बन्ध तोड़ने होते हैं—यही पूर्णता है।

शिष्य : किन्तु यदि आप इस जगत से अपने सारे सम्बन्ध तोड़ लें, तो फिर आप अराजकता से कैसे बच सकते हैं और अच्छी सरकार कैसे पा सकते हैं?

श्रील प्रभुपाद : हाँ, यह भी एक बात है। आपको पूर्ण सत्ता का अनुगमन करना होता है।

शिष्य : और उनको यही आपत्ति थी : आप परम सत्ता का अनुगमन करने की सलाह देते हैं।

श्रील प्रभुपाद : यदि आप पूर्ण समाज चाहते हैं, तो आपको परिपूर्ण सत्ता का अनुगमन करना होगा। आप लौकिक राजनीति के माध्यम से पूर्णता नहीं पा सकते। आपको असली, मान्य अधिकारियों का अर्थात् पूर्ण मुक्त आत्माओं का अनुगमन करना होगा। वैदिक संस्कृति में यही पद्धति थी। कृष्ण तथा वैदिक वाङ्मय ही सत्ता थे और समाज का निर्देशन मानवजाति के पूर्वज मनु तथा *मनुसंहिता* द्वारा होता था। *महाजनो येन गतः स पन्थाः*—पूर्णता प्राप्त करने के लिए हमें महाजनों अर्थात् पूर्ण स्वरूपसिद्ध अधिकारियों का अनुगमन करना चाहिए।

शिष्य : किन्तु ये नौजवान कह रहे थे कि आध्यात्मिक अधिकारी भी अपूर्ण हैं।

श्रील प्रभुपाद : उन्हें कहने दो। किन्तु हम उनके मत को क्यों मानें? यह तो अपूर्ण धूर्तों का मत है। सत्ता विषयक उनकी एकमात्र धारणा यह है, "जिसकी लाठी उसकी भैंस।"

उदाहरणार्थ कल एक पक्ष दलील दे रहा था, "लोगों को सत्ता

दो।" अतः उनके पास कुछ अधिकार होगा, इसीलिए वे दबाव डाल रहे हैं, "तुम को यह विचार मानना होगा।" और यह विश्वभर में चल रहा है—"जिसकी लाठी उसकी भैंस।" सारे धूर्त एक दूसरे से लड़-झगड़ रहे हैं और इनमें से जो थोड़ा भी शक्तिशाली होता है, वह प्रमुख बन जाता है। बस।

शिष्य : वे कहते हैं कि ऐसा सदा होता रहता है—किसी भी सत्ता के साथ। कोई भी नेता जोर लगा कर अपने आप को आगे कर लेता है। इस तरह उन्होंने सारी सत्ताओं का बहिष्कार कर दिया है।

श्रील प्रभुपाद : हाँ, क्योंकि उनकी सारी तथाकथित सत्ताएँ अपूर्ण रही हैं। किन्तु एक पूर्ण सत्ता भी है—वह पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण हैं। और जो भी अधिकारी कृष्ण के आदेशों का पालन करता है तथा उनकी शिक्षा देता है, वह भी पूर्ण है। यही है सत्ता।

हम कृष्णभावनाभावित भक्त कृष्ण की सत्ता का अक्षरशः पालन करते हैं। कृष्णभावनामृत प्रस्तुत करते समय हम केवल कृष्ण के शब्दों को प्रस्तुत करते हैं और लोगों को यह समझाना चाहते हैं कि "असली सत्ता यहाँ है। यदि तुम इसका अनुगमन करोगे, तो तुम सुखी होगे।" कृष्ण कहते हैं, "तुम मेरी शरण में आओ।" और हम कहते हैं, "कृष्ण की शरण में जाओ।" हम जानते हैं कि कृष्ण पूर्ण हैं और उनकी शरण में जाना पूर्णता है। और जब भी हम कुछ बोलते हैं, हम सदैव कृष्ण तथा उनके

प्रतिनिधियों के उद्धरण देते हैं।

शिष्य : तो क्या शरण में जाने के लिए किसी व्यक्ति को उस व्यक्ति पर श्रद्धा नहीं होनी चाहिए, जो उसे शरण में जाने को कहता है ?

श्रील प्रभुपाद : हाँ, श्रद्धा तो होनी ही चाहिए। इसीलिए *भगवद्गीता* में सर्वप्रथम कृष्ण यह सिद्ध करते हैं कि वे परम सत्य हैं। तब वे आपको शरणागत होने के लिए कहते हैं। किन्तु यह समझने के लिए आपके पास बुद्धि होनी चाहिए कि "ये कृष्ण हैं।" तब आप शरण में जा सकते हैं। *भगवद्गीता* में कृष्ण प्रारम्भ में ही यह नहीं कह देते कि "मेरी शरण में आओ।" सर्वप्रथम वे सब कुछ समझाते हैं—शरीर, आत्मा, योग के प्रकार, ज्ञान के भिन्न रूपों की व्याख्या करते हैं, तब वे यह सर्वाधिक गुह्य ज्ञान प्रदान करते हैं, "अन्य सब कुछ त्याग कर मेरी शरण में आओ।"

इस भौतिक जगत में हर कोई अपूर्ण है। पूर्ण पुरुष के प्रति स्वेच्छा से आत्मसमर्पण किये बिना हर कोई अपूर्ण है। किन्तु जिसने कृष्ण या उनके प्रतिनिधि की पूर्ण शरण ले ली है, वह पूर्ण है। किन्तु यदि तुम पूर्ण सत्ता की शरण में नहीं आते, तो तुम अपूर्ण मूढ़ बने रहोगे। चाहे तुम नैपोलियन हो या छोटी सी चींटी, हम यह देखना चाहते हैं कि तुमने कृष्ण की शरण ग्रहण की है या नहीं। यदि नहीं, तो तुम धूर्त हो। बस इतना ही। •

१९

वैज्ञानिक प्रगति : वाग्जाल

यह वार्तालाप मार्च १९७५ में अटलांटा में श्रील प्रभुपाद एवं उनके शिष्य भक्तिस्वरूप दामोदर स्वामी, पीएच डी के मध्य हुआ।

भक्तिस्वरूप दामोदर स्वामी : आधुनिक विज्ञानीजन प्रयोगशाला में जीवन उत्पन्न करने के लिए कठिन परिश्रम कर रहे हैं।

श्रील प्रभुपाद : यह समझने का प्रयास करो : जिस तरह ईश्वर पहले से सर्वत्र विद्यमान हैं, उसी तरह सारे जीव भी ईश्वर के भिन्नांश होने के कारण पहले से विद्यमान हैं—शाश्वत रूप से। इसलिए तुम्हें "सृजन" करने की आवश्यकता नहीं है। यह मूर्खता है, क्योंकि जीव शाश्वत है—उनका सृजन नहीं किया जाता। ये जीव सहज रूप से भौतिक जगत में चार भिन्न प्रकारों से प्रकट होते हैं। इनमें से कुछ बीजों के द्वारा, कुछ किण्वन (जामन) द्वारा, कुछ अंडों से और कुछ भ्रूण से प्रकट होते हैं। लेकिन सारे जीव पहले से विद्यमान हैं, अतः सृजन का प्रश्न ही नहीं उठता। जीव का यही विज्ञान है।

पहले से लाखों करोड़ों जीव हैं, फिर भी भौतिकतावादी विज्ञानीजन इसके लिए बड़े-बड़े सम्मेलन करते रहते हैं कि

किसी चीज को कैसे उत्पन्न किया जाय। जरा इस बचकाने प्रस्ताव को तो देखो! वे समय का अपव्यय करते हैं, लोगों को दिग्भ्रमित बनाते हैं और हर व्यक्ति की गाढ़ी कमाई को विनष्ट करते हैं। इसलिए मैं उन्हें धूर्त कहता हूँ। वे "सृजन करने" का प्रयास करते हैं। वे क्या सृजन करेंगे? सारी वस्तुएँ पहले से हैं, किन्तु वे अपनी बढ़ी-चढ़ी शिक्षा के बावजूद इसे नहीं जानते। इसीलिए *भगवद्गीता* उन्हें *मूढ* यानी धूर्त कहती है।

अब इन मूढ़ों को बतला दो, "भाइयो, तुम सृजन नहीं कर सकते, न ही कोई वस्तु सृजित की जा सकती है। जरा यह पता लगाओ कि जीव कहाँ से आ रहे हैं, उनका स्रोत क्या है और सारी प्रकृति के पीछे कौन-सा मस्तिष्क कार्य करता है। इसको ढूँढ़ो। यही असली ज्ञान है। यदि तुम इस ज्ञान के लिए संघर्ष करो और हर वस्तु के आदि स्रोत को ढूँढ़ने का प्रयास करो, तो किसी न किसी दिन तुम समझ सकोगे कि ईश्वर ही हर वस्तु के स्रोत हैं और तब तुम्हारा ज्ञान पूर्ण होगा—*वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः*।" (भगवद्गीता ७.१९)

इस सुन्दर फूल को देखो। क्या तुम सोचते हो कि यह किसी मस्तिष्क के निर्देशन के बिना स्वतः ही उत्पन्न हुआ है? यह नासमझी का दर्शन है। ये तथाकथित विज्ञानी अनेक आडम्बर-पूर्ण शब्दों का प्रयोग करते हैं, किन्तु उनमें से कितने वास्तविक व्याख्या करते हैं? अन्य कोई नहीं समझ सकता, इसे केवल वे ही समझ पाते हैं। वे ऐसी जटिल भाषा का इस तरह प्रयोग करते हैं कि जब तक वे स्वयं व्याख्या नहीं करते, तब तक कोई समझ

नहीं सकता। वे कहते हैं कि सबकुछ 'प्रकृति द्वारा' स्वतः किया जाता है। यह तथ्य नहीं है।

प्रकृति एक उपकरण है। यह अद्‌भुत कम्प्यूटर जैसी है। फिर भी इसका एक संचालक है। इन धूर्तों में सामान्य बुद्धि भी नहीं है। ऐसा यन्त्र कहाँ है, जो बिना किसी संचालक का चलता है? क्या उनके अनुभव-क्षेत्र में ऐसा कोई यन्त्र है? वे कैसे सुझाव देते हैं कि प्रकृति स्वतः कार्य करती है? प्रकृति एक अद्‌भुत यन्त्र है, किन्तु उसके संचालक ईश्वर या कृष्ण हैं। यही वास्तविक ज्ञान है। क्योंकि यन्त्र अति अद्‌भुत रीति से कार्य कर रहा है, तो क्या इसका अर्थ यह हुआ कि इसका कोई संचालक नहीं है?

उदाहरणार्थ, हार्मोनियम भी एक यन्त्र है और यदि कोई दक्ष संगीतज्ञ इसे बजाता है, तो यह अत्यन्त सुरीली तथा मनमोहक ध्वनि उत्पन्न करता है। "ओह! कितना सुन्दर!" किन्तु क्या हार्मोनियम स्वतः बजेगा और सुरीली ध्वनि उत्पन्न करेगा? अतः उनमें कोई सामान्य-बुद्धि भी नहीं है, फिर भी वे अपने को विज्ञानी कहते हैं। इसी का हमें दुःख होता है कि इन लोगों में कोई सामान्य-बुद्धि भी नहीं है, फिर भी वे विज्ञानी कहलाते हैं।

भक्तिस्वरूप दामोदर स्वामी : वे सोचते हैं कि क्योंकि वे रसायन विज्ञान के द्वारा कुछ प्रारम्भिक ऐमीनो अम्लों का संश्लेषण कर सकते हैं...

श्रील प्रभुपाद : यह तो शिल्पकारी है, ज्ञान नहीं। उदाहरणार्थ, यदि हम कहें कि आप गुलाब का एक चित्र बनाते हैं, तो आप चित्रकार हैं, ज्ञानवान व्यक्ति नहीं। "ज्ञानवान" का अर्थ है ऐसा

व्यक्ति जो जानता है कि वस्तुएँ कैसे बनाई जाती हैं। चित्रकार तो जो देखता है उसी का अनुकरण भर करता है। अतएव कला तथा विज्ञान दो पृथक् विभाग हैं।

भक्तिस्वरूप दामोदर स्वामी : तो यदि वे कोई संश्लेषी वस्तु उत्पन्न करते हैं, तो वह केवल कला है।

श्रील प्रभुपाद : हाँ। उदाहरणार्थ, अच्छा रसोइया जानता है कि मसालों को कैसे मिलाया जाता है और किस तरह स्वादिष्ट वस्तुएँ तैयार की जाती हैं। अतः रसायनशास्त्री को आप एक अच्छा रसोइया कह सकते हैं। रसायनशास्त्र विभिन्न रसायनों को मिलाने की एक कला मात्र है। तेल होता है, क्षार होता है और यदि दोनों को कारीगरी से मिला दिया जाय, तो अत्यन्त उपयोगी साबुन बन जाता है।

भक्तिस्वरूप दामोदर स्वामी : किन्तु विज्ञानी आश्वस्त हैं कि वे येन-केन-प्रकारेण जीवन को उत्पन्न कर सकेंगे और मनुष्य तक को बना लेंगे।

श्रील प्रभुपाद : समस्या यह नहीं कि यदि वे जीवन का सृजन नहीं करेंगे, तो संसार नरक में मिल जाएगा। जीवन तो पहले से है। उदाहरणार्थ, कई मोटरकारें हैं। यदि मैं कोई अन्य मोटरकार तैयार कर लूँ, तो क्या यह मेरे लिए बहुत बड़ी शाबाशी है? न जाने कितनी मोटरकारें पहले से हैं! जब मोटरकारें नहीं थीं, तो जिस पहले व्यक्ति ने मोटरकार बनाई, उसके लिए कुछ श्रेय की बात थी कि "आपने बहुत अच्छी घोड़ाविहीन गाड़ी तैयार कर दी। लोग इससे लाभ उठाएँगे; सुविधा होगी, बस।" किन्तु जब

लाखों मोटरकारें हैं, जिनसे दुर्घटनाएँ होती रहती हैं और मैं एक अन्य मोटरकार बनाऊँ, तो इसमें मुझे क्या श्रेय है? मेरा श्रेय क्या है?

भक्तिस्वरूप दामोदर स्वामी : शून्य।

श्रील प्रभुपाद : शून्य। और इस शून्य को पाने के लिए वे कोई बहुत बड़ा सम्मेलन करने जा रहे हैं, जिसमें अनेक लोग आएँगे और रुपया खर्च करेंगे।

भक्तिस्वरूप दामोदर स्वामी : वे श्रेष्ठतर मानव बनाना चाहते हैं। वे जीवन को श्रेष्ठतर बनाना चाहते हैं।

श्रील प्रभुपाद : हाँ, यही हमारा प्रस्ताव है। हम विज्ञानियों से कहते हैं, "आप लोग जीव बनाने में समय बर्बाद न करें। अपने जीवन को श्रेष्ठतर बनाने का प्रयास करें। अपनी वास्तविक आध्यात्मिक पहचान को समझने का प्रयास करें, जिससे आप इसी जीवन में सुखी बन सकें। ऐसा शोधकार्य होना चाहिए।" उन्हें जो पहली बात सीखनी है, वह यह है कि शरीर रूपी मोटरकार का एक चालक अथवा आत्मा है। ज्ञान का यह पहला बिन्दु है। इस सामान्य बात को समझे बिना वे निरे गधे हैं। चालक यानी आत्मा इस शरीर रूपी मोटरकार को चला रहा है। यदि चालक शिक्षित है, तो वह अपने शरीर को आत्म-साक्षात्कार के लिए चला सकता है, जिससे वह अपने घर अर्थात् भगवद्धाम वापस जा सकता है। तब वह पूर्ण बनता है। अतएव हम चालक को शिक्षित कर रहे हैं—हम टिन की अन्य कार नहीं बना रहे। यही कृष्णभावनामृत है। •

२०

प्रौद्योगिकी को आध्यात्मिक प्रकाश में देखना

यह विचार-विनिमय जुलाई १९७५ में शिकागो में प्रातःकालीन भ्रमण के समय श्रील प्रभुपाद तथा उनके कतिपय शिष्यों के बीच हुआ।

शिष्य : इसके पूर्व आप कह रहे थे कि पाश्चात्य जगत आध्यात्मिक रूप से अन्धा है और भारत प्रौद्योगिक दृष्टि से लँगड़ा है, किन्तु यदि वे अपने संसाधनों को मिला लें, तो भारत तथा पश्चिम दोनों ही लाभान्वित होंगे।

श्रील प्रभुपाद : हाँ। यदि पाश्चात्य जगत, जो कि अंधे व्यक्ति के समान है, भारत रूपी लँगड़े व्यक्ति को अपने कंधे पर चढ़ा ले, तो लँगड़ा व्यक्ति आध्यात्मिक रूप से मार्ग बता सकता है और अंधा व्यक्ति भौतिक दृष्टि से—प्रौद्योगिक दृष्टि से—उसका पालन कर सकता है। यदि अमरीका तथा भारत अपने प्रौद्योगिक तथा आध्यात्मिक संसाधनों को एक साथ मिला लें, तो यह संयोग सारे विश्व में पूर्ण शान्ति तथा सम्पन्नता ला देगा।

ये अमरीकी कितने अन्धे हैं! इन्होंने मनुष्य-जीवन पाया

है—ऐसा बुद्धिमान जीवन—फिर भी ये इसका उपयोग झील में मोटरबोट पर चढ़ने के लिए करते हैं। देखा न? मनुष्य को हर क्षण का उपयोग अपनी ईशचेतना वापस पाने के लिए करना चाहिए। एक क्षण भी बर्बाद नहीं किया जाना चाहिए। और ये लोग हैं कि समय की बर्बादी के नित नये तरीके निकाल रहे हैं।

निस्संदेह, अमरीकी लोग इन कामों को अति उत्तम ढंग से, बहुत ही प्रौद्योगिक उन्नति के साथ कर रहे हैं, किन्तु वे जो कुछ कर रहे हैं वह *अन्धा काम* है। आप कितने ही अच्छे चालक क्यों न हों, किन्तु यदि आप अन्धे हैं तो आप कैसे अच्छी तरह से मोटर चला सकते हैं? आप दुर्घटना कर बैठेंगे। अतः अमरीकी लोगों को चाहिए कि वे अपनी आँखों को आध्यात्मिक रूप से खोलें, जिससे उनकी अच्छी चालन-क्षमता का सही उपयोग हो सके। अब वे सूक्ष्मदर्शियों के माध्यम से देखने का प्रयास कर रहे हैं। किन्तु जब तक वे अपनी आध्यात्मिक पहचान के प्रति अंधे बने रहेंगे, तब तक वे क्या देख सकेंगे? भले ही उनके पास सूक्ष्मदर्शी अथवा यह यन्त्र या वह यन्त्र हो, किन्तु वे हैं अंधे ही। वे यह बात नहीं जानते।

शिष्य : मेरे विचार से अधिकांश अमरीकी आत्म-साक्षात्कार की अपेक्षा परिवार-पालन में अधिक रुचि लेते हैं।

श्रील प्रभुपाद : पारिवारिक जीवन से कृष्णभावनामृत किसी भी तरह अवरुद्ध नहीं होता। *अहैतुक्यप्रतिहता।* यदि आप निष्ठावान हैं, तो ईशभावनामृत किसी भी वस्तु से बाधित नहीं हो सकता।

किसी भी परिस्थिति में आप लगे रह सकते हैं। आप

कृष्णभावनामृत को चार प्रकार से सम्पन्न कर सकते हैं—*प्राणैर् अर्थैर् धिया वाचा*—अपने जीवन, अपने धन, अपनी बुद्धि तथा अपनी वाणी से। यदि आप गृहस्थ बनना चाहते हैं—यदि आप प्रतिदिन चौबीस घण्टे लगे नहीं रह सकते, तो धन कमाइए और इसका उपयोग कृष्णभावनामृत का प्रचार करने में कीजिए। यदि आप धन नहीं कमा सकते, तो अपनी बुद्धि का उपयोग कीजिए। बुद्धिमत्ता का कितना ही काम करने के लिए पड़ा है—प्रकाशन, शोध इत्यादि। यदि आप यह नहीं कर सकते, तो लोगों को कृष्ण के विषय में बतलाने के लिए अपनी वाणी का उपयोग कीजिए। आप चाहे जहाँ रहें, किसी न किसी को बतलाइए कि "कृष्ण ही पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। कृष्ण को सादर नमस्कार कीजिए।" बस, इतना ही।

तो फिर अवसरों का अभाव कहाँ है? आप कृष्ण की सेवा किसी भी रूप में कर सकते हैं, बशर्ते कि आप सेवा करना चाहें। किन्तु यदि आप कृष्ण को अपनी सेवा में लगाना चाहें, तो यह बहुत भारी भूल है। लोग गिरजाघर जाते हैं और कहते हैं, "हे परमेश्वर, हमारी सेवा कीजिये। हमें हमारी रोजी-रोटी दीजिये।"

लोग स्वयं अपनी समस्याएँ बना लेते हैं। वस्तुतः समस्याएँ हैं ही नहीं। *ईशावास्यमिदं सर्वम्*—ईश्वर ने हर वस्तु की व्यवस्था कर रखी है। उन्होंने हर वस्तु को पूर्ण बनाया है। तुम देखते हो कि पक्षियों के लिए अनेक फल हैं। *पूर्णमिदम्*—कृष्ण ने पहले से हर वस्तु की पर्याप्त मात्रा दे रखी है। किन्तु ये धूर्त अन्धे हैं—

वे इसे देखते नहीं। वे समाधान करने में लगे रहते हैं। उन्हें

समाधान करने की क्या आवश्यकता है? हर वस्तु पहले से पर्याप्त मात्रा में है। बात यह है कि लोग वस्तुओं का दुरुपयोग कर रहे हैं। अन्यथा उनके पास पहले से पर्याप्त भूमि है, पर्याप्त बुद्धि है—हर वस्तु पर्याप्त मात्रा में है।

आफ्रिका तथा आस्ट्रेलिया में लोंगो के पास पर्याप्त भूमि है और वे फसलों जैसे प्राकृतिक उपहार पर आश्रित न रह कर, पशुओं को वध करने के लिए पालते हैं। यह उनकी बुद्धि है। लोग यह जानते हुए भी कि कॉफी, चाय तथा तम्बाकू उनके स्वास्थ्य को हानि पहुँचाने वाली फसलें हैं, उन्हें उगाते हैं। संसार के कुछ हिस्सों में लोग अन्न की कमी से मर रहे हैं; फिर भी संसार के अन्य भागों में लोग तम्बाकू उगा रहे हैं, जो केवल रोग तथा मृत्यु को लाती है। यह है उनकी बुद्धि!

समस्या यह है कि ये धूर्त यह नहीं जानते कि यह जीवन ईश्वर को समझने के लिए है। आप किसी से भी पूछिए, कोई नहीं जानता। ऐसे मूर्ख हैं वे। क्या आप नहीं देखते कि वे कुत्तों की कितनी देखभाल करते हैं? वे अन्धे हैं। वे नहीं जानते कि वे ईश्वरभावनाभावित होंगे या कुकरभावनाभावित। कुत्ता चार पैरों के बल दौड़ता है, किन्तु लोग सोचते हैं कि चार पहिए वाली कार पर दौड़ने से वे उन्नत बन गए हैं। वे सोचते हैं कि वे सभ्य बन गए हैं, किन्तु उनका व्यापार सिर्फ दौड़ना है। बस इतना ही।

शिष्य : दौड़-धूप का उद्देश्य एक-सा है—खाना, सोना, संभोग करना और आत्मरक्षा करना।

श्रील प्रभुपाद : हाँ, यदि प्रयोजन कुत्ते का-सा ही है, तो कार

के चलने से क्या लाभ? हाँ, आप कार का इस्तेमाल कृष्ण-भावनामृत का सन्देश लेकर लोगों तक पहुँचने के लिए कर सकते हैं। आप हर वस्तु का उपयोग कृष्ण के लिए कर सकते हैं। यही शिक्षा हम देते हैं। यदि कोई सुन्दर-सी कार है, तो मैं उसकी भर्त्सना क्यों करूँ? इसका उपयोग कृष्ण के लिए करें, तो यह सर्वथा सही है। हम यह नहीं कहते, "इसका परित्याग कर दो।" नहीं। जब आपने किसी वस्तु को अपनी ईश्वर-प्रदत्त बुद्धि से बनाया है, तो यह सब ठीक है, बशर्ते कि आप इसका इस्तेमाल भी ईश्वर के लिए करें। किन्तु जब आप इसका उपयोग कृष्ण के अलावा अन्य कार्यों के लिए करते हैं, तो यह बकवास है।

इसी कार को लें—जो अच्छे ढंग से सजाई गई है। यदि मैं कहूँ यह बकवास है, तो क्या यह बुद्धिमानी है? नहीं। आपने इस कार को जिस कार्य के लिए बनाया है, वह बकवास है। अतः हम चाहते हैं कि लोग केवल अपनी चेतना बदलें। हम उनके द्वारा उत्पन्न की गई वस्तुओं की भर्त्सना नहीं करते।

उदाहरणार्थ, चाकू से आप शाक तथा फल काट सकते हैं, किन्तु यदि इसका इस्तेमाल आप अपना गला काटने के लिए करें, तो यह बुरी बात है। अतः लोग प्रौद्योगिकी के चाकू का इस्तेमाल अब अपना ही गला काटने, आत्म-साक्षात्कार अर्थात् कृष्णभावनामृत को भुलाने के लिए करते हैं। यह बुरा है।

नृदेहम् आद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पम्—हमारा मानव-शरीर एक सुन्दर नाव के समान है। अपनी मानवी बुद्धि से हम

अज्ञान के सागर को, इस जगत में बारम्बार जन्म तथा मृत्यु के सागर को, पार कर सकते हैं। तथा *गुरुकर्णधारम् मायानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा*—हमारे पास अनुकूल वायु है—वैदिक वाङ्मय में कृष्ण के उपदेश हैं—तथा उसी के साथ अच्छा कप्तान अर्थात् प्रामाणिक गुरु है, जो हमारा मार्गदर्शन कर सकते हैं तथा हमें प्रबुद्ध कर सकते हैं। यदि इन समस्त सुविधाओं के होते हुए भी हम अज्ञान-सागर को पार न कर पाएँ, तब तो हम अपना गला काट रहे हैं। नाव है, कप्तान है, अनुकूल वायु है, किन्तु हम उनका उपयोग नहीं कर रहे। इसका अर्थ है कि हम अपने हाथों अपनी हत्या कर रहे हैं। •

२१

धर्मनिरपेक्ष राज्य

यह वार्तालाप सितम्बर १९७३ में स्टाकहोम में श्रील प्रभुपाद एवं स्वीडन में भारत के राजदूत के मध्य हुआ।

श्रील प्रभुपाद : अमरीका तथा भारत में और विश्व भर के अनेक देशों में "धर्मनिरपेक्ष राज्य" हैं। सरकारी नेता कहते हैं कि वे किसी धर्मविशेष का पक्ष नहीं लेना चाहते, किन्तु वस्तुतः वे अधर्म का पक्ष ले रहे हैं।

राजदूत : सही में हमारी एक समस्या है। हमारा समाज बहु-धर्मावलम्बी है; इसलिए हम जैसे सरकारी लोगों को सतर्क रहना पड़ता है। हम धर्म के विषय में अति दृढ़ रुख नहीं अपना सकते।

श्रील प्रभुपाद : नहीं, नहीं। सरकार को दृढ़ रुख अपनाना चाहिए। निस्संदेह, सरकार को सभी प्रकार के प्रामाणिक धर्मों के प्रति निरपेक्ष रहना चाहिए। लेकिन उसका यह भी कर्तव्य है कि वह देखे कि लोग वास्तव में धार्मिक बनें। ऐसा नहीं कि सरकार, धर्मनिरपेक्ष राज्य के नाम पर, लोगों को नरक की ओर जाने दे।

राजदूत : हाँ, यह सच है।

श्रील प्रभुपाद : हाँ, यदि आप मुसलमान हैं, तो सरकार का

कर्तव्य है कि वह देखे कि आप सचमुच मुसलमान की तरह व्यवहार करते हैं। यदि आप हिन्दू हैं, तो सरकार का कर्तव्य है कि वह आपको हिन्दू की तरह व्यवहार करते देखे। यदि आप ईसाई हैं, तो सरकार का कर्तव्य है कि वह यह देखे कि आप ईसाई की तरह कार्य कर रहे हैं। सरकार धर्म को त्याग नहीं सकती। *धर्मेणहीन: पशुभि: समानम्*—यदि लोग अधार्मिक हो जाते हैं, तो वे केवल पशु तुल्य हैं। इसलिए सरकार का कर्तव्य यह देखना है कि नागरिकजन पशु न बन जाँय। लोग भिन्न प्रकार के धर्मों के अनुयायी हो सकते हैं। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। किन्तु उन्हें धार्मिक होना चाहिए। 'धर्मनिरपेक्ष राज्य' का अर्थ यह नहीं है कि सरकार लापरवाह रहे, "लोग कुत्ते-बिल्लियाँ बन जाँय, बिना धर्म के रहें।" यदि सरकार परवाह नहीं करती, तो वह अच्छी सरकार नहीं है।

राजदूत : मेरे विचार से आप जो कुछ कह रहे हैं उसमें बहुत सार है। किन्तु आप जानते हैं कि राजनीति तो "सम्भव की कला" है।

श्रील प्रभुपाद : नहीं। राजनीति का अर्थ यह देखना है कि लोग आगे बढ़ें, नागरिक आध्यात्मिक दृष्टि से बढ़ें। ऐसा नहीं कि वे पतित हो जाएँ।

राजदूत : हाँ, मैं सहमत हूँ। लेकिन मेरे विचार से सरकार का पहला कर्तव्य है ऐसी सुविधाएँ प्रदान करना, जिससे प्रतिभावान व्यक्ति, आप जैसे आध्यात्मिक नेता, कार्य कर सकें। यदि सरकार

इससे कुछ अधिक करती है, तो वह विभिन्न धार्मिक समुदायों

को भ्रष्ट भी कर सकती है। मेरे विचार से सरकार को खेल के निर्णायक (अम्पायर) की तरह होना चाहिए—उसे स्वच्छन्द विचार प्रकट करने के लिए परिस्थितियाँ प्रदान करनी चाहिए।

श्रील प्रभुपाद : नहीं। सरकार इससे भी ज्यादा करना चाहिए। उदाहरणार्थ, आपका वाणिज्य विभाग है—सरकार देखती है कि व्यापार तथा उद्योग के संस्थान अच्छी तरह चल रहे हैं। सरकार लाइसेंस देती है। उनके पास निरीक्षक तथा पर्यवेक्षक होते हैं। या मान लीजिए आपका शिक्षा विभाग है—उसमें शिक्षा के निरीक्षक होते हैं, जो यह देखते हैं कि छात्रों को ठीक से शिक्षा मिल रही है। इसी तरह सरकार ऐसे दक्ष व्यक्तियों को नियुक्त कर सकती है, जो यह जाकर देखा करें कि हिन्दू सचमुच हिन्दुओं की तरह कार्य कर रहे हैं, मुसलमान मुसलमानों की तरह तथा ईसाई ईसाइयों की तरह कार्य कर रहे हैं। सरकार को धर्म के प्रति लापरवाह नहीं होना चाहिए। वह निरपेक्ष भले ही रहे। "चाहे आप जिस धर्म को अपनाएँ, उससे हमें कुछ भी लेना-देना नहीं।" लेकिन यह देखना सरकार का कर्तव्य है कि आप ठीक से कार्य कर रहे हैं—आप धोखा नहीं दे रहे।

राजदूत : अवश्य... जहाँ तक नैतिक आचरण की बात है। लेकिन, आप जानते हैं, इससे अधिक किस तरह सम्भव है?

श्रील प्रभुपाद : बात यह है कि जब तक आप धार्मिक सिद्धान्तों का पालन नहीं करते, तब तक सम्भवतः आपका नैतिक आचरण उत्तम नहीं हो सकता—

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना
सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः।
हरावभक्तस्य कुतो महद्-गुणा
मनोरथेनासति धावतो बहिः॥

"जिसमें ईश्वर के प्रति अविचल भक्ति होती है, उसमें निरन्तर समस्त दैवी गुण प्रकट होते हैं। किन्तु जिसमें ऐसी भक्ति नहीं होती, वह भगवान् की भौतिक बहिरंगा शक्ति का दुरुपयोग करने के लिए सदैव योजनाएँ बनाता रहता है, जिससे उसमें कोई उत्कृष्ट नैतिक गुण नहीं आ पाते।" (*श्रीमद्भागवत* ५.१८.१२) जब तक आपकी ईश्वर में श्रद्धा है, ईश्वर में भक्ति है, तब तक सब कुछ ठीक है। आखिर ईश्वर एक हैं। ईश्वर न हिन्दू हैं, न ईसाई हैं, न मुस्लिम हैं, ईश्वर एक हैं। इसीलिए वैदिक ग्रन्थ हमें बताते हैं—

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति॥

"समस्त मानवता का परम कर्तव्य भगवान् की प्रेममयी भक्तिमय सेवा प्राप्त करना है। एकमात्र ऐसी अहैतुकी तथा अनवरुद्ध भक्ति आत्मा को पूरी तरह तुष्ट कर सकती है।"(*भागवत* १.२.६) अतः मनुष्य को धार्मिक होना चाहिए। धार्मिक हुए बिना कोई भी तुष्ट नहीं हो सकता। आखिर, विश्व भर में इतना अधिक असन्तोष तथा इतनी अधिक अव्यवस्था क्यों है? क्योंकि लोग अधार्मिक बन गए हैं।

राजदूत : मास्को में अनेकानेक लोग धर्म के विरोधी हैं। सरकार

धर्म के विरुद्ध।

श्रील प्रभुपाद : आप मास्को ही क्यों कहते हैं? *सर्वत्र ही।* कम से कम, मास्को में वे ईमानदार तो हैं। वे ईमानदारी के साथ कहते हैं कि, "हम ईश्वर में विश्वास नहीं करते।"

राजदूत : यह सच है, यह सच है।

श्रील प्रभुपाद : किन्तु अन्य स्थानों में वे कहते हैं, "मैं हिन्दू हूँ," "मैं मुसलमान हूँ," "मैं ईसाई हूँ," "मैं ईश्वर में विश्वास करता हूँ।" किन्तु फिर भी वे धर्म के सम्बन्ध में कुछ *भी* नहीं जानते। *वे ईश्वर के नियमों का पालन नहीं करते।*

राजदूत : मुझे तो लगता है कि हममें से बहुत से वैसे ही हैं। यह सच है।

श्रील प्रभुपाद : (हँसते हैं) मैं कहूँगा कि कम से कम मास्को में वे भद्र हैं। वे धर्म को नहीं समझ सकते, अतः वे कहते हैं, "हम विश्वास नहीं करते।" किन्तु ये अन्य धूर्त तो कहते हैं, "हम धार्मिक हैं। हमें ईश्वर में विश्वास है।" फिर भी वे सर्वाधिक अधार्मिक कृत्य करते हैं। मैंने कई बार ईसाइयों से पूछा है, "आपकी बाइबल कहती है, 'तू वध नहीं करेगा,' तो फिर आप वध क्यों करते हैं?" वे इसका सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे पाते। यह स्पष्ट कहा गया है, "तू वध नहीं करेगा" और वे कसाईघर चला रहे हैं। यह सब क्या है? ●

२२

हम व्याघ्र-चेतना में नहीं रह सकते

यह विचार-विनिमय लास-ऐंजिलिस हरे कृष्ण केन्द्र में दिसम्बर १९६८ में श्रील प्रभुपाद तथा कुछ अतिथियों के बीच हुआ था।

अतिथि : यदि मनुष्य पशुओं का मांस न खायें, तो सम्भवतः वे भूख से अथवा कुछ इसी तरह से मर जाएँ।

श्रील प्रभुपाद : आप पशुओं के भूखों मरने से इतने चिन्तित क्यों हैं? आप अपनी परवाह कीजिये। आप परोपकारी मत बनिये, "ओह! वे भूखों मरेंगे, अतः मैं उन्हें खा लूँ।" यह कैसा परोपकार है? भोजन तो कृष्ण प्रदान कर रहे हैं। यदि कोई पशु भूख से मरता है, तो यह कृष्ण की जिम्मेदारी है। कोई भूखों नहीं मरता। यह गलत सिद्धान्त है। क्या आपने किसी पशु को भूखों मरते देखा है? ईश्वर के राज्य में किसी के भूखों मरने का प्रश्न ही नहीं है। हम अपनी ही इन्द्रिय-तुष्टि के लिए इन सिद्धान्तों को बना रहे हैं। अफ्रीका तथा भारत के जंगलों में लाखों हाथी हैं। उन्हें एक बार में खाने के लिए एक सौ पौंड भोजन चाहिए। यह भोजन कौन दे रहा है? अतः ईश्वर के राज्य में भूखों मरने का प्रश्न ही नहीं उठता। भुखमरी तो तथाकथित

सभ्य मनुष्य के लिए है।

अतिथि : यदि मनुष्य मांस खाने के लिए नहीं होता, तो प्रकृति में अन्य पशु क्यों वध करते?

श्रील प्रभुपाद : क्या आप "अन्य पशु" हैं?

अतिथि : सही में, हम सभी पशु तो हैं।

श्रील प्रभुपाद : क्या आप अपनी गणना पशुओं में करते हैं? क्या आप अपने को पशुओं के साथ वर्गीकृत करते हैं?

अतिथि : हाँ, हम सभी पशु हैं...

श्रील प्रभुपाद : नहीं, बिल्कुल नहीं। आप भले ही हों, हम तो नहीं हैं। क्या आप अपना वर्गीकरण पशुओं में कराना चाहेंगे?

अतिथि : मुझे नहीं लगता है कि मैं पशुओं से बेहतर हूँ। मैं ईश्वर के सभी प्राणियों का आदर करता हूँ।

श्रील प्रभुपाद : आप सबों का आदर करते हैं और पशुओं का वध करते हैं?

अतिथि : यदि मनुष्य मांस खाने के लिए नहीं है, तो फिर प्रकृति में पशु एक दूसरे को क्यों खाते हैं?

श्रील प्रभुपाद : जब पशु एक दूसरे को खाते हैं, तो वे प्रकृति के नियमों का पालन करते हैं। जब आप मांस खाते हैं, तो आप प्रकृति के नियम को तोड़ते हैं।

अतिथि : क्या?

श्रील प्रभुपाद : उदाहरणार्थ, बाघ कभी अनाज के लिए दावा नहीं करेगा, "ओह, आपके पास इतना सारा अन्न है। थोड़ा मुझे दीजिये।" नहीं। यदि आपके पास सैकड़ों बोरे भी अन्न हों, तो

वह इसकी तनिक भी परवाह नहीं करता। किन्तु वह पशु पर झपट्टा मारेगा। यह उसका स्वभाव है। किन्तु आप अन्न, फल, दूध, मांस तथा जो भी उपलब्ध हो उसे क्यों ग्रहण करते हैं? यह क्या है? आप न तो पशु हैं न मनुष्य। आप अपनी मानवता का दुरुपयोग कर रहे हैं। आपको सोचना चाहिए, "*मेरे लिए* खाने योग्य क्या है? बाघ मांस खा सकता है—वह आखिर बाघ है। किन्तु मैं बाघ नहीं हूँ। मैं तो मनुष्य हूँ। यदि मेरे पास ईश्वरप्रदत्त प्रचुर अन्न, फल, शाक तथा अन्य वस्तुएँ हैं, तो मैं बेचारे पशु का वध क्यों करूँ?" यह मानवता है।

आप तो पशु के साथ मानव हैं। यदि आप अपनी मानवता भुला देते हैं, तो आप पशु हैं। (क्षणिक शान्ति) अतः हम केवल पशु नहीं हैं। हम पशु के साथ मानव हैं। यदि हम मानवता के गुण को विकसित करते हैं, तो हमारा जीवन पूर्ण है। किन्तु यदि हम पशुता में रहते रहें, तो हमारा जीवन अपूर्ण है। अतः हमें अपनी मानव-चेतना अर्थात् कृष्णभावना—को बढ़ाना है। यदि आप कृष्ण द्वारा प्रदत्त अनेक प्रकार की खाद्य वस्तुएँ खाकर शन्तिपूर्वक अच्छे ढंग से रह सकते हैं, तो आप किसी पशु का वध क्यों क़रें?

इसके अलावा भी वैज्ञानिक दृष्टि से आपके दाँत शाक खाने के लिए बने हैं। बाघ के दाँत मांस खाने के लिए होते हैं। प्रकृति ने उसे ऐसा बनाया है। उसे अन्य पशु को मारना पड़ता है, अतः उसके नाखून होते हैं, दाँत होते हैं, शक्ति होती है। किन्तु आप में उतनी शक्ति नहीं होती। आप एक गाय को बाघ की तरह

झपट्टा मार कर नहीं मार सकते। आपको कसाईघर बनवाने होते हैं और आपको अपने घर पर ही बैठे रहना होता है। यदि कोई दूसरा व्यक्ति गाय की हत्या करता है, तो आप अच्छी तरह खा सकते हैं। यह क्या है? आप भी बाघ जैसा किजिये! गाय के ऊपर झपट्टा मारिये और उसे खाइये! आप ऐसा नहीं कर सकते।

अतिथि : तो आप प्रकृति के नियम में विश्वास नहीं करते। मेरे विचार से प्रकृति का नियम हर एक पर समान रूप से लागू होता है।

श्रील प्रभुपाद : प्रकृति के नियम द्वारा बाघ उसी तरह से बनाया गया है, अतएव वह वैसा कर सकता है। आप नहीं कर सकते; आपका स्वभाव भिन्न है। आप में विवेक है, आप में कर्तव्य भावना है, आप अपने को सभ्य मानव कहते हैं—अतएव आपको इन सबका सही उपयोग करना चाहिए। यही कृष्णभावनामृत है—पूर्ण चेतना। मानव-जीवन तो चेतना की पूर्णता तक ऊपर उठने के लिए बना है और यही कृष्णभावना है। हम बाघ-चेतना में नहीं रह सकते। यह मानवता नहीं है।

दूसरा अतिथि : क्या हम ऊपर से नीचे गिरे हैं या हम पौधों तथा पशुओं से ऊपर आये हैं?

श्रील प्रभुपाद : हाँ, स्वाभाविक रूप से आप ऊँचे से नीचे गिरे हैं—आध्यात्मिक जगत से इस भौतिक जगत में आये हैं और तब निम्नतर योनियों में पहुँचे हैं। फिर आप उन्नति करते हैं और पुनः इस मनुष्य रूप को प्राप्त करते हैं। यदि आप अपनी उच्चतर चेतना का उपयोग करते हैं, तो आप इससे भी ऊँचे जाते हैं; आप ईश्वर

के पास जाते हैं। किन्तु यदि आप अपनी उच्चतर चेतना का उपयोग नहीं करते, तो पुनः नीचे चले आते हैं।

अतः आप दिग्भ्रमित न हों। ईशभावनामृत या कृष्णभावनामृत ग्रहण करें और यही इस मनुष्य जीवन का सही उपयोग होगा। अन्यथा यदि हम बाघ की तरह मांसाहार की लत लगाएँगे, तो हमें अगले जन्म में बाघ का शरीर प्राप्त हो सकता है, किन्तु इससे क्या लाभ? मान लीजिये कि अगले जीवन में मैं अति बलशाली बाघ बन जाऊँ। क्या यह बहुत अच्छी उन्नति होगी? क्या आप बाघ के जीवन को जानते हैं? उन्हें प्रति दिन खाने को भी नहीं मिलता। वे एक पशु पर झपट्टा मारते हैं और उसे छिपा कर रख देते हैं तथा सड़े हुए मांस को एक महीना भर खाते हैं, क्योंकि उन्हें पशु मारने का अवसर हमेशा हाथ नहीं आता। ईश्वर उन्हें वह अवसर उपलब्ध नहीं होने देते। यह प्राकृतिक है—जहाँ कहीं भी जंगल में बाघ होता है, तो अन्य पशु भाग जाते हैं। आत्म-रक्षा के लिए। अतएव बिरले ही जब बाघ अत्यन्त भूखा होता है, तो ईश्वर उसे अन्य पशु पर झपट्टा मारने का अवसर देते हैं। बाघ नित्य अनेकानेक स्वादिष्ट व्यंजन नहीं पा सकता। यह तो मनुष्य जीवन ही है, जिसमें हमें इतनी सारी सुविधाएँ मिलती हैं। किन्तु यदि हम उनका दुरुपयोग करें तो... हमें बाघ जीवन मिलता है—अति बलिष्ठ तथा झपट्टा मारने की पूरी क्षमता से युक्त जीवन। •

२३

ईशविमुख विज्ञानी

यह बातचीत दिसम्बर १९७३ में प्रात:कालीन भ्रमण के समय लास एन्जलिस के वेनिस तट में श्रील प्रभुपाद तथा उनके कुछ शिष्यों के बीच हुई।

शिष्य : विज्ञानी कहते हैं कि उनकी तर्क शक्ति बताती है कि ईश्वर नहीं हैं। वे कहते हैं कि यदि आप ईश्वर में विश्वास करते हैं, तो यह मात्र आस्था का विषय है।

श्रील प्रभुपाद : यह आस्था का विषय नहीं है—यह तथ्य है।

शिष्य : जब विज्ञानी 'तथ्य' की बात कहते हैं, तो उनका आशय होता है कोई ऐसी वस्तु जिसकी अनुभूति वे इन्द्रियों के माध्यम से कर सकते हैं।

श्रील प्रभुपाद : हाँ। और कृष्णभावनामृत में हम अपनी इन्द्रियों के माध्यम से ईश्वर की अनुभूति कर सकते हैं। हम अपनी इन्द्रियों को जितना अधिक भक्तिमय सेवा में—ईश्वर की सेवा में—लगाते हैं, उतना ही अधिक हम ईश्वर की अनुभूति कर सकते हैं। *हृषीकेण हृषीकेशसेवनं भक्तिरुच्यते*—"जब कोई व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को सर्वोपरि की सेवा में लगाता है, तो वह सम्बन्ध भक्ति कहलाता है।" उदाहरणार्थ, हम अपने पैरों का

प्रयोग मन्दिर तक जाने में तथा अपनी जीभ का प्रयोग ईश्वर का गुणगान करने एवं प्रसाद लेने में करते हैं।

शिष्य : लेकिन विज्ञानी कहते हैं कि ये श्रद्धा के कार्य हैं। वे कहते हैं कि जब आप ईश्वर को भोजन अर्पित करते हैं, तो यह केवल आपकी आस्था रहती है जिससे आप सोचते हैं कि ईश्वर उसे ग्रहण करते हैं। उनका कहना है कि *वे* ईश्वर को खाते नहीं देख सकते।

श्रील प्रभुपाद : *वे* भले न देख सकें, किन्तु *मैं* देख सकता हूँ। मैं उनके जैसा मूर्ख नहीं हूँ। वे आध्यात्मिक रूप से अन्धे हैं; वे अज्ञान रूपी मोतियाबिन्द से ग्रस्त हैं। यदि वे मेरे पास आएँ, तो मैं आपरेशन कर दूँगा और तब वे भी ईश्वर को देखने लगेंगे।

शिष्य : हाँ, लेकिन विज्ञानी ईश्वर को अभी देखना चाहते हैं।

श्रील प्रभुपाद : किन्तु कृष्ण उनके समक्ष अभी नहीं प्रकट होंगे, क्योंकि वे धूर्त हैं—बहुत बड़े पशु। *श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः*—"जो भगवान् का भक्त नहीं है, वह बहुत बड़ा पशु—ऊँट, कुत्ता, या सुअर—है और उसकी प्रशंसा करने वाले भी उसी जैसे हैं।"

शिष्य : वे कहते हैं कि तुम लोग मात्र स्वप्नद्रष्टा हो—तुम ईश्वर तथा वैकुण्ठ के विषय में कहानियाँ गढ़ते हो।

श्रील प्रभुपाद : वे 'कहानियां' क्यों कहते हैं? चूँकि उनमें समझने की बुद्धि नहीं है, इसीलिए वे 'कहानियाँ' कहते हैं।

शिष्य : वस्तुपरकता का उनका मानदण्ड वह है, जिसे वे अपनी इन्द्रियों से अनुभव कर सकें।

श्रील प्रभुपाद : हाँ, वे अपनी इन्द्रियों से ही ईश्वर की अनुभूति कर सकते हैं। जब वे अपनी इन्द्रियों से बालू की अनुभूति करते हैं, तो बालू किसने बनाई के बारे में वे क्या सोचते हैं? उन्होंने नहीं बनाई है। जब वे अपनी इन्द्रियों से समुद्र देखते हैं, तो वे क्या सोचते हैं कि इसे किसने बनाया? वे ऐसे मूर्ख क्यों हैं कि इतना भी नहीं समझ पाते?

शिष्य : वे कहते हैं कि यदि ईश्वर ने ये वस्तुएँ बनाईं होतीं, तो वे ईश्वर को भी देख सकते थे जिस तरह वे समुद्र को देख सकते हैं।

श्रील प्रभुपाद : मैं उनसे कहता हूँ, "तुम ईश्वर को देख सकते हो, किन्तु पहले तुम्हारे पास उन्हें देखने के लिए आँखें होनी चाहिए। तुम अन्धे हो; तुम्हारे मोतियाबिन्द है। मेरे पास आओ, मैं आपरेशन कर दूँगा। तब तुम ईश्वर को देख सकोगे।" इसीलिए वैदिक शास्त्र कहते हैं—*तद् विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्*—ईश्वर को देख पाने के लिए तुम्हें प्रामाणिक गुरु के पास जाना चाहिए। अन्यथा वे अपनी अंधी आँखों से ईश्वर को कैसे देख सकते हैं?

शिष्य : लेकिन विज्ञानियों को इस तरह के देखने में, जिसकी आप बात कर रहे हैं, कोई आस्था नहीं। वे जिस एकमात्र देखने में कोई श्रद्धा रखते हैं, वह है जिसे वे अपनी आँखों से तथा अपने सूक्ष्मदर्शी यंत्र तथा दूरबीन से पा सकते हैं।

श्रील प्रभुपाद : क्यों? यदि इस समय तुम आकाश को निहारो, तो तुम सोचोगे कि वह रिक्त है। किन्तु वह रिक्त नहीं है—तुम्हारी

आँखें अक्षम हैं। आकाश में असंख्य ग्रह तथा तारे हैं, किन्तु तुम उन्हें देख नहीं सकते—उनके प्रति तुम अन्धे हो। अतः चूँकि तुम ग्रह तथा तारे नहीं देख सकते, तो क्या इसका अर्थ यह हुआ कि वे विद्यमान नहीं हैं?

शिष्य : विज्ञानी स्वीकार करते हैं कि कुछ वस्तुओं के विषय में वे अज्ञानी हैं। फिर भी वे ऐसी वस्तुओं के विषय में आपकी व्याख्या को नहीं मानेंगे, जिन्हें वे अपनी आँखों से नहीं देख सकते।

श्रील प्रभुपाद : क्यों नहीं?

शिष्य : क्योंकि वे सोचते हैं कि आप जो कुछ उन्हें बताते हैं, वह गलत हो सकता है।

श्रील प्रभुपाद : यह तो उनका दुर्भाग्य है। हमारी स्थूल इन्द्रियाँ ईश्वर तक नहीं पहुँच पातीं। उन्हें जानने के लिए हमें किसी अधिकारी से सुनना होगा—उच्चतर ज्ञान प्राप्त करने की यही विधि है।

शिष्य : लेकिन इसमें श्रद्धा की जरूरत है—गुरु में श्रद्धा की।

श्रील प्रभुपाद : श्रद्धा नहीं, सामान्य ज्ञान की। यदि आपको आयुर्वेद सीखना हो, तो आपको दक्ष वैद्य के पास जाना होगा। आप अपने से इसे नहीं सीख सकते।

शिष्य : श्रील प्रभुपाद, आपने जो कुछ कहा है, उससे स्पष्ट है कि हम अपने विचारों का समर्थन भलीभाँति कर सकते हैं जिस तरह नास्तिक विज्ञानी अपने विचारों का करते हैं। लेकिन वे समाज के नियन्त्रक हैं; उनकी प्रधानता है।

श्रील प्रभुपाद : प्रधानता? (हँसते हैं) माया (कृष्ण की भौतिक शक्ति) की एक दुलत्ती खाते ही उनकी सारी "प्रधानता" क्षण भर में गायब हो जाती है। वे माया द्वारा नियन्त्रित होते हैं, किन्तु वे अपने को स्वतन्त्र समझते हैं। यह उनकी मूर्खता है।

शिष्य : वे होश में आना नहीं चाहते।

श्रील प्रभुपाद : इसीलिए वे धूर्त हैं। धूर्त वह है, जो आपके द्वारा गलत सिद्ध किए जाने पर भी अपने को सही बताता रहता है। वह कभी भी अच्छी शिक्षा ग्रहण नहीं करेगा। और वे धूर्त क्यों बने रहते हैं? *न मां दुष्कृतिनो मूढा: प्रपद्यन्ते नराधमा:* (*भगवद्गीता* ७.१५)—क्योंकि वे *दुष्कृतिन* अर्थात् अत्यन्त पापी हैं। क्या तुम देख नहीं रहे हो कि वे संसार को किस तरह कसाईघर तथा वेश्यालय बनाए दे रहे हैं; किस तरह वे ऐन्द्रिय विलास को बढ़ावा देकर हर एक का जीवन चौपट कर रहे हैं? ये सब पापकर्म हैं। चूँकि विज्ञानी इतने पापी हैं, अतः उन्हें घोर नरक की यातना सहनी होगी। अगले जन्म में वे मल के कीड़े बनेंगे। फिर भी अज्ञान के कारण वे अपने आप को सुरक्षित मान रहे हैं। •

२४

नोबेल पुरस्कार ईश्वर को दीजिए

यह वार्तालाप जून १९७४ को जेनेवा में प्रात:कालीन भ्रमण के समय श्रील प्रभुपाद तथा उनके कुछ शिष्यों के बीच हुआ था।

श्रील प्रभुपाद : जरा इस अंजीर को देखो। इस एक अंजीर में तुम्हें हजारों बीज मिलेंगे और हर नन्हा बीज एक नए पूर्ण वृक्ष को जन्म देगा। वह रसायनवेत्ता कहाँ है, जो ऐसा कार्य कर सके! पहले वृक्ष बनाए, फिर वृक्ष में फल लगाए और इसके बाद फल में बीज बनाए तथा अन्त में बीजों से अनेक वृक्ष बनाए। बताओ मुझे, वह रसायनवेत्ता कहाँ है?

शिष्य : श्रील प्रभुपाद, वे गर्व से बातें करते हैं, लेकिन इनमें से कोई भी रसायनवेत्ता तथा ऐसे लोग कुछ भी करके नहीं दिखा सकते।

श्रील प्रभुपाद : एक बार एक बहुत बड़े रसायनवेत्ता मेरे पास आए और उन्होंने यह स्वीकार किया, "हमारी रासायनिक प्रगति, हमारी वैज्ञानिक प्रगति उस व्यक्ति के समान है, जिसने भूँकना सीख लिया है। पहले से अनेक प्राकृतिक कुत्ते भूँक रहे हैं,

लेकिन कोई उन पर ध्यान नहीं देता। किन्तु यदि कोई मनुष्य

कृत्रिम रूप से भूँकने की कला सीख ले, तो कई लोग उसे देखने आएँगे—यहाँ तक कि दस, बीस डालर का टिकट भी खरीद लेंगे—केवल एक बनावटी कुत्ते को देखने के लिए। हमारी वैज्ञानिक प्रगति ऐसी ही है।

यदि कोई व्यक्ति प्रकृति की कृत्रिम नकल उतारता है, जैसे कि भूँकने की, तो लोग उसे देखने जाते हैं और धन भी खर्च करते हैं। किन्तु जहाँ प्राकृतिक भूँकने की बात होती है, तो कोई परवाह नहीं करता। और जब ये तथाकथित बड़े-बड़े वैज्ञानिक धूर्त यह दावा करते हैं कि वे जीवन का निर्माण कर सकते हैं, तो लोग सभी तरह से प्रशंसा करते हैं तथा पुरस्कार प्रदान करते हैं। जहाँ तक ईश्वर की पूर्ण प्राकृतिक विधि की बात है, करोड़ों प्राणी प्रति क्षण जन्म लेते हैं, किन्तु कोई इसकी परवाह नहीं करता। लोग ईश्वर की प्रक्रिया को अत्यधिक श्रेय नहीं देते।

जो मूर्ख मृत भौतिक रसायनों से जीव बनाने की कोई आदर्शवादी योजना का ढोंग रचता है, उसे सारा श्रेय प्रदान किया जाता है—ये लो, नोबेल पुरस्कार। वे कहेंगे, "देखो, यहाँ है सर्जनशील प्रतिभा।" और प्रकृति प्रति क्षण भौतिक शरीरों में करोड़ों आत्माएँ प्रविष्ट कराती रहती है—यह ईश्वर की व्यवस्था है। किन्तु इस पर कोई ध्यान नहीं देता। यही धूर्तता है।

यदि हम यह कल्पना कर भी लें कि आप अपनी प्रयोगशाला में एक मनुष्य या पशु का निर्माण कर सकते हैं, तो इसमें आपका श्रेय क्या है? आखिर, आपने केवल एक मनुष्य या पशु को

उत्पन्न किया और भगवान् तो करोड़ों को जन्म देते हैं। अतः हम

कृष्ण को श्रेय देना चाहते हैं, जो उन सारे प्राणियों के असली जन्म देने वाले हैं, जिन्हें हम नित्य देखते हैं।

शिष्य : श्रील प्रभुपाद, क्या आपको एल्डुअस हक्सले का स्मरण है, जिसने अपनी पुस्तक *ब्रेव न्यू वर्ल्ड* में आनुवांशिक विधि से शिशुओं की छँटाई तथा कुछ गुणों के आधार पर मनुष्यों के प्रजनन की भविष्यवाणी की थी? उसका विचार गुणों की एक प्रजाति को लेकर श्रमिकों की एक श्रेणी का प्रजनन करना, दूसरी प्रजाति से प्रशासकों का प्रजनन करना तथा अन्य प्रजाति से सभ्य सलाहकारों तथा विद्वानों का प्रजनन करना था।

श्रील प्रभुपाद : फिर वही बात, यह भी ईश्वर की प्राकृतिक व्यवस्था में पहले से उपस्थित है। *गुणकर्मविभागशः*—विगत जन्म में अपने गुणों तथा कर्मों के अनुसार मनुष्य इस जीवन में उपयुक्त शरीर पाता है। यदि किसी ने अज्ञान के गुणों तथा कर्मों का अनुशीलन किया होगा, तो उसे अज्ञानी शरीर मिलता है और उसे शारीरिक श्रम करके जीना पड़ता है। यदि किसी ने रजोगुणी कर्मों का अनुशीलन किया है, तो उसे रजोगुणी शरीर मिलता है और उसे अन्यों का भार उठाने का प्रशासनिक कार्य करके जीना होता है। यदि किसी ने प्रबुद्धता के गुणों तथा कर्मों का अनुशीलन किया है, तो उसे प्रबुद्ध शरीर मिलता है और उसे लोगों को प्रबुद्ध करके तथा उपदेश देकर जीना होता है।

आप देखिये तो! ईश्वर ने पहले से ऐसी पूर्ण व्यवस्था कर रखी है। प्रत्येक आत्मा को उसकी इच्छा तथा योग्यता के अनुसार

शरीर मिलता है और सामाजिक व्यवस्था में वांछित गुणों वाले

नागरिक मिलते हैं। ऐसा नहीं है कि आपको इन गुणों को लेकर शरीर सृजन करने होते हैं। भगवान् अपनी प्राकृतिक व्यवस्था द्वारा आत्मा-विशेष को विशिष्ट प्रकार के शरीर से सुसज्ज करते हैं। जो कुछ ईश्वर तथा प्रकृति पहले से भलीभाँति करते आ रहे हैं, उसकी नकल करने के प्रयास से क्या लाभ?

मैंने उस विज्ञानी से, जो मुझे मिलने आया था, कह दिया, "तुम विज्ञानी लोग व्यर्थ ही समय नष्ट कर रहे हो।" बच्चों का खिलवाड़। वे कुत्तों के भूँकने की नकल मात्र कर रहे हैं। विज्ञानी उस असली कुत्ते पर ध्यान नहीं देता, उसे कोई श्रेय नहीं देता, जो स्वाभाविक भूँकने का कार्य करता है। वस्तुतः आज यही स्थिति है। जब प्राकृतिक कुत्ता भूँकता है, तो वह विज्ञान नहीं होता। जब नकली बनावटी कुत्ता भूँकता है, तो वह विज्ञान है। है न? भगवान् की प्राकृतिक व्यवस्था जो कुछ पहले से कर रही है, उसकी नकल करने में जिस स्तर तक ये विज्ञानी सफल होते हैं, वही विज्ञान है।

शिष्य : श्रील प्रभुपाद, जब आपने विज्ञानियों को यह दावा करते सुना था कि अब वे परखनली में शिशु उत्पन्न कर सकते हैं, तब आपने कहा था, "लेकिन यह तो पहले से माता के गर्भाशय में किया जा रहा है। गर्भाशय परिपूर्ण परखनली है।"

श्रील प्रभुपाद : हाँ, प्रकृति पहले से हर काम नितान्त पूर्णता के साथ सम्पन्न कर रही है। लेकिन कोई दम्भी विज्ञानी भद्दा अनुकरण करेगा और वह भी प्रकृति के द्वारा दी गई सामग्री का उपयोग करके, नोबेल पुरस्कार पा लेगा। और शिशु उत्पन्न करने

की बात जाने दें; ये विज्ञानी अपनी गर्वीली प्रयोगशालाओं में घास की एक पत्ती बना कर दिखाएँ।

शिष्य : तब तो उन्हें भगवान् एवं प्रकृति माता को नोबेल पुरस्कार प्रदान करना चाहिए।

श्रील प्रभुपाद : अवश्य! अवश्य!

शिष्य : सचमुच, मेरे विचार से उन्हें आपको नोबेल पुरस्कार देना चाहिए। आपने न जाने कितने मूर्ख नास्तिकों को अपनाकर ईश-भक्त उत्पन्न किये हैं।

श्रील प्रभुपाद : ओह मैं, मैं तो "प्राकृतिक कुत्ता" हूँ, अतः वे मुझे क्यों पुरस्कृत करने लगे? (हँसते हैं) वे तो बनावटी कुत्ते को पुरस्कार देंगे। •

२५

सामाजिक क्रांति

यह वार्तालाप जून १९७४ में श्रील प्रभुपाद एवं संयुक्तराष्ट्र के विश्व स्वास्थ्य संगठन के सदस्यों के बीच जेनेवा में हुआ।

श्रील प्रभुपाद : आप सारे विश्व में, या विश्व में कहीं पर भी, आप इस प्रयोग को कर सकते हैं जिस प्रकार हम कर रहे हैं। सीधा सादा जीवन व्यतीत कीजिए, आत्मनिर्भर होइए, अपनी आवश्यक वस्तुएँ फैक्टरियों से न लेकर खेतों से लीजिए तथा ईश्वर के पवित्र नामों का गुणगान कीजिए।

इस औद्योगिक तन्त्र में, यह चाहे पूँजीवादी हो या साम्यवादी, केवल थोड़े से बड़े लोग अन्य कई लोगों का शोषण करके सुखी—तथाकथित सुखी—हो सकते हैं। चूँकि इन कतिपय भ्रष्ट लोगों के द्वारा अन्य लोगों का शोषण किया जाता है या उन्हें बेरोजगार कर दिया जाता है, इसलिए अन्य लोग भी भ्रष्ट हो जाते हैं। वे काम से जी चुराते हैं और यों ही समय गँवाते हैं या फिर ईमानदारी से कार्य नहीं करते। और भी अनेक बातें हैं।

अतएव एकमात्र औषधि यही है कि हर एक को स्वाभाविक ढंग से रहना चाहिए और ईश्वर के पवित्र नामों का जप करना

चाहिए। ईश-भावनाभावित होइए; यह औषधि सरल है और यहाँ उसके कुछ परिणाम आप प्रत्यक्ष देख सकते हैं। मेरे तरुण यूरोपीय तथा अमरीकी अनुयायीओं में नशीली दवाएँ लेने, शराब पीने, धूम्रपान करने तथा अन्य आधुनिक बुरे व्यसनों की लत थीं। किन्तु अब देखो न! वे कितने गम्भीर हो गए हैं और किस तरह ईश्वर के पवित्र नाम का गायन कर रहे हैं।

आप दुनिया को बदल सकते हैं और हर चीज को ठीक कर सकते हैं, बशर्ते कि आप यह शिक्षा ग्रहण करें। अन्य कोई औषधि नहीं है। यदि आप सुनना ही न चाहें, तो क्या किया जा सकता है? असली औषधि तो है, किन्तु यदि आप उसे ग्रहण न करना चाहें, तो रोग कैसे ठीक होगा?

विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O.) का सदस्य : इसके पूर्व आपने देहातवासियों के शहर की ओर दुर्भाग्यपूर्ण पलायन करने का उल्लेख किया। आपने यह इंगित किया कि शहरी जीवन में देहातवासी फैक्टरी-मजदूर बन जाते हैं और तब उनमें अनेक बुराइयाँ घर करने लगती हैं। तत्पश्चात् आपने यह हल सुझाया कि यदि हम गाँवों में रहें और मात्र तीन महीने खेतों में काम करें, तो पूरे वर्ष के लिए भोजन जुट जाएगा।

लेकिन मैं यह बात उठाना चाहूँगा कि हमारे कस्बों तथा देहातों में बिकट रूप में बेरोजगारी है। वहाँ बहुत से लोगों को विनाश का भय खाये जाता है। वे अपने लिए पर्याप्त खाद्य सामग्री उत्पन्न नहीं कर पाते, क्योंकि उनके पास जमीन नहीं है।

व्यापारी लोग भूमि का उपयोग अपने निजी कार्यों के लिए करते

हैं, इसीलिए अनेक सामान्यजन बेरोजगार हैं। इसीलिए वे शहरों में जाते हैं। ऐसा जरूरी नहीं है कि शहरों का 'अच्छा जीवन' उन्हें आकृष्ट करता है, अपितु इसलिए कि जमीन पर उनकी पहुँच नहीं है। यह जमीन व्यापारी लोगों के द्वारा काम में नहीं लाई जाती है और सामान्यजन गाँवों में स्वतन्त्र होकर रहने तथा अपने लिए पर्याप्त खाद्यान्न उत्पन्न करने में असमर्थ हैं।

अब व्यापारी वर्ग शोषण कर रहा है। वे शोषण करते हैं। अतएव जब तक कोई ऐसी क्रान्ति नहीं होती, जिसके द्वारा इस व्यापारी वर्ग की शक्ति सीमित कर दी जाए, तब तक आप यह आशा कैसे कर सकते हैं कि कभी न कभी लोग अपने गाँवों में रह सकेंगे और भूमि पर अपना खाद्यान्न उत्पन्न कर सकेंगे?

श्रील प्रभुपाद : बात यह है कि सरकार का दायित्व बनता है कि वह देखे कि कोई भी व्यक्ति बेकार न रहे। वही अच्छी सरकार है। वैदिक प्रणाली में समाज में चार स्वाभाविक वर्ग हैं—*ब्राह्मण* अर्थात् विचारशील वर्ग जो शिक्षा और सलाह देता है; *क्षत्रिय* या प्रभावशाली वर्ग जो रक्षा करता है और संगठन करता है। तत्पश्चात् *वैश्य* या व्यापारी वर्ग जो भूमि तथा गौवों की देखभाल करता है तथा खाद्यान्न उत्पादन की ओर ध्यान देता है। तथा *शूद्र* या श्रमिक वर्ग जो अन्य वर्गों की सहायता करता है।

इसका अर्थ यह है कि सरकार में प्रभावशाली क्षत्रियों का होना आवश्यक है, जो अन्य सभी लोगों की रक्षा करें और इसका ध्यान रखें कि विभिन्न वर्ग के लोग अपना-अपना कार्य करें। सरकार को देखना होता है कि हर व्यक्ति को ठीक से

रोजगार मिले। तभी बेरोजगारी की सारी समस्या हल हो सकेगी।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O.) का सदस्य : लेकिन सम्प्रति व्यापारी वर्ग भी सरकार में सम्मिलित है। वस्तुतः वे मजबूत जड़ें जमाए हैं। सरकार में उनकी बात मानी जाती है और कई बार वे सरकार में खुद अधिकारी होते हैं।

श्रील प्रभुपाद : नहीं। इसका अर्थ है बुरी सरकार।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O.) का सदस्य : हाँ! यह... यह सच है।

श्रील प्रभुपाद : वह बुरी सरकार है। व्यापारी वर्ग को सरकार से कोई सरोकार नहीं होना चाहिए। अन्यथा सरकार—बिना किसी निम्न उद्देश्य के—किस तरह हर एक के रोजगार के विषय में देख सकती है?

सरकार को चाहिए कि वह व्यापारी वर्ग को अपनी कार्य-कुशलता का मुक्त-रूप से उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित करे, लेकिन वह ऐसे अस्वाभाविक उद्योगों की योजना न बनाए जो बनें, बिगड़ें और लोग बेकार हो जाएँ। सरकार को देखना होगा कि हर व्यक्ति सही रोजगार में लगे।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O.) का सदस्य : मैं उस दिन की तलाश में हूँ, जब कृष्णभावनामृत आन्दोलन असली क्रान्तिकारी अन्दोलन बन सकेगा और समाज की आकृति को बदल देगा।

श्रील प्रभुपाद : हाँ। मैं सोचता हूँ कि यह क्रान्ति लाएगा, क्योंकि अमरीकी तथा यूरोपीय लोग इसे गम्भीरता से ले रहे हैं।

मैंने इसका सूत्रपात उनके बीच कर दिया है और वे अत्यन्त बुद्धिमान हैं; वे हर बात को गम्भीरता से लेते हैं।

हम केवल कुछ ही वर्षों से कार्य कर रहे हैं, फिर भी हमने सारे विश्व में इस आन्दोलन का प्रसार कर दिया है। यदि लोग इसे गम्भीरता से लेंगे, तो यह आगे चलेगा और क्रान्ति आएगी, क्योंकि हम मनमाने ढंग से तथा ईर्ष्या—द्वेषवश कार्य नहीं कर रहे। हम शास्त्र से प्रामाणिक निर्देश ग्रहण कर रहे हैं। इसमें पर्याप्त जानकारी है। लोग इन ग्रन्थों को पढ़कर जानकारियाँ पा सकते हैं। यदि वे इसे गम्भीरता से लें, तो यह क्रांति आ सकेगी।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O.) का सदस्य : मैं आपकी एक बात से सहमत नहीं हो सकता। भारतीय होने के नाते एक प्रश्न प्रायः मुझे परेशान करता रहता है। आपने जिस प्रकार प्राकृतिक और सीधे-सादे जीवन की ओर लौटने की बातें कही हैं, उनमें से बहुत में मेरा विश्वास है। आध्यात्मिक तुष्टि पाने के विषय में भी मैं सहमत हूँ। उसके विषय में कोई प्रश्न नहीं है। मैं वह "पश्चिमी मानसिकता" वाला भारतीय नहीं हूँ। मैं जिस बात से सहमत नहीं हो पाता, वह यह है कि हम, जिनके पास यह आध्यात्मिक ज्ञान तथा सांस्कृतिक दिशानिर्देश थे, जिन्हें आपने अभी-अभी हमारी समस्याओं का हल बताया है, अपने समाज को उन विविध बुराइयों से मुक्त नहीं रख पाए जो अब घर कर गई हैं। मैं केवल गरीबी का उल्लेख नहीं कर रहा, अपितु बेरोजगारी तथा भुखमरी एवं अन्य अनेक बातों का भी उल्लेख कर रहा हूँ।

श्रील प्रभुपाद : नहीं। यह हमारे सांस्कृतिक दिशानिर्देश के कारण नहीं, अपितु उन बुरे नेताओं के कारण है, जो उनका अनुगमन नहीं करते। यह सब इन्हीं बुरे नेताओं के कारण है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O.) का सदस्य : वे तो अपने ही लोग हैं। वे...

श्रील प्रभुपाद : रहे वे अपने ही लोग। वे हमारे अपने पिता क्यों न हों। प्रह्लाद महाराज भगवद्भक्त थे, फिर भी उनका पिता हिरण्यकशिपु निपट असुर था। तो किया क्या जा सकता है? अधिकांश लोग नेक हैं; फिर भी हम देखते हैं कि उनका नेता ईश्वरविहीन असुर होता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O.) का सदस्य : हाँ, हिरण्यकशिपु का विनाश तो होना ही था।

श्रील प्रभुपाद : इसीलिए वह विनष्ट कर दिया गया। ईश्वर की कृपा से वह विनष्ट कर दिया गया। और इन आधुनिक आसुरी नेताओं में से हर एक का विनाश होगा। वे सभी विनष्ट होंगे। किन्तु हर काम में समय लगता है।

सम्प्रति हमारे नेतागण बहुत नेक नहीं हैं। वे अन्धे हैं। उन्हें कोई ज्ञान नहीं है और फिर भी वे मार्गदर्शन कर रहे हैं। *अन्धा यथान्धैरुपनीयमानास्*—एक अन्धा दूसरे अन्धे को ले जा रहा है—गड्ढे में। इन नेताओं ने संसार की मूल आध्यात्मिक संस्कृति की हत्या कर दी है और ये उसकी जगह पर कुछ नहीं दे सकते।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O.) का सदस्य : तो इसीलिए आपके आन्दोलन ने सामाजिक दर्शन में अपने को लगा रखा है?

श्रील प्रभुपाद : हाँ। यह आन्दोलन सर्वाधिक व्यावहारिक है। उदाहरणार्थ, हम मांस न खाने को कहते हैं, लेकिन नेतागण इसे पसन्द नहीं करते। हम उनके प्रचार के अधिक अनुकूल नहीं हैं। इसलिए नेता हमें पसन्द नहीं करते। आखिर, उन्होंने ही यहाँ-वहाँ सभी जगह कसाईघरों तथा गोमांस की दुकानों की अनुमति दे रखी है और हम हैं कि कहे जा रहे हैं, "मांसाहार न करें।" तो भला वे हमें क्यों चाहने लगे? यही कठिनाई है। "जहाँ अज्ञान ही वरदान हो, वहाँ चतुराई दिखाना मूर्खता है।" फिर भी हम संघर्ष कर रहे हैं।

तथा हम जिस विकल्प की संस्तुति करते हैं, वह भी व्यावहारिक है। ये ईशभावनाभावित खेतिहर गाँव सफल सिद्ध हुए हैं। इनके निवासी अपने जीवन को सुखी एवं समृद्ध पा रहे हैं। प्रकृति उन्हें फल, शाक तथा अन्न उपहार-रूप में प्रदान करती है। गौवें दूध देती हैं जिससे वे दही, पनीर, मक्खन तथा मलाई प्राप्त कर सकते हैं। इन वस्तुओं से आप हजारों प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन तैयार कर सकते हैं और पूरी तरह संतोष का अनुभव कर सकते हैं। यही मूलभूत सिद्धान्त है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O.) का सदस्य : यह तो सफल प्रयास का उदाहरण है, किन्तु आप कोई ऐसी बात बताइए जिसका अभी तक प्रयास नहीं किया गया हो?

श्रील प्रभुपाद : 'नई बात' यह है कि ईशभावनाभावित खेतिहर गाँवों में रहने वाले इन लोगों को जीविकोपार्जन के लिए दूर नहीं जाना पड़ता है। आधुनिक समाज के लिए यह नई बात है।

सम्प्रति बहुत से लोगों को फैक्टरी या कार्यालय तक पहुँचने के लिए कुछ दूर यात्रा करनी पड़ती है। जब रेलवे हड़ताल हुई थी तो संयोगवश मैं बम्बई में था। अरे, लोगों को अपार कष्ट झेलना पड़ा। देखा आपने? प्रातःकाल पाँच बजे से गाड़ी पकड़ने के लिए वे पंक्तिबद्ध खड़े थे। निस्सन्देह, हड़ताल के दौरान शायद ही कोई गाड़ी चल रही थी। अतः लोग काफी मुसीबत में थे। यदि एक-आध गाड़ियाँ चल भी रही थीं, तो डिब्बों में घुसने के लिए मारा-मारी थी। वे पिसे जा रहे थे। यहाँ तक कि वे गाड़ी की छत पर भी चढ़ गये थे।

असल में, अधिक औद्योगीकृत बढ़े-चढ़े देशों में लोग अपनी-अपनी मोटरकारों से फैक्टरी या कार्यालय जाते हैं और राजमार्ग में उनकी दुर्घटना से मारे जाने का जोखिम बना रहता है। तो प्रश्न यह उठता है कि किसी को मात्र अपनी जीविका कमाने के लिए अपने घर से मीलों दूर यात्रा करने के लिए बहकाया क्यों जाए? यह बहुत बुरी सभ्यता है। खाना-पिना तो हर एक को अपने रहने के स्थान पर ही मिलना चाहिए। यही अच्छी सभ्यता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O.) का सदस्य : जहाँ तक मैं समझ सका हूँ, आपका उद्देश्य भोजन के मामले में हर एक को आत्मनिर्भर बनाना है। किन्तु यदि सारे लोग भोजन के उत्पादन में लग जाएँगे, तो अन्य वस्तुएँ कौन जुटाएगा?

श्रील प्रभुपाद : हम यह नहीं कहते कि हर व्यक्ति अन्न-उत्पादन में लगे। *भगवद्गीता* के अनुसार स्वभावतः कुछ लोग भोजन

उत्पन्न करेंगे। एक वर्ग आध्यात्मिक मार्गदर्शन कराएगा और कुछ लोग सरकार या राजा के रूप में प्रबन्ध सँभाल लेंगे। शेष लोग श्रमिक होंगे, जो अन्य समुदायों की सहायता करेंगे।

ऐसा नहीं है कि हर व्यक्ति खेतिहर होगा। नहीं। एक मस्तिष्क विभाग, एक प्रबन्धक विभाग और एक श्रमिक विभाग होना चाहिए। किसी भी समाज में ऐसे समुदाय स्वाभाविक हैं और इनको आध्यात्मिक अनुशीलन के लिए मिलकर काम करना चाहिए। •

२६

सामाजिक शरीर को स्वस्थ बनाये रखने के लिए कालेज

यह वार्तालाप मार्च १९७४ में वृन्दावन–भारत में श्रील प्रभुपाद तथा उनके कुछ शिष्यों के मध्य हुआ।

श्रील प्रभुपाद : इस युग में राजनीतिज्ञों का कार्य गरीब नागरिकों का शोषण करना होगा और नागरिक गण अत्यधिक आकुल तथा सताए हुए रहेंगे। एक ओर अपर्याप्त वर्षा होगी जिससे भोजन का अभाव हो जाएगा। दूसरी ओर सरकार अत्यधिक कर लगाएगी। इस तरह लोग इतने सताए जाएँगे कि वे अपने–अपने घर छोड़ कर जंगलों में चले जाएँगे।

अत्रेय ऋषि दास : आजकल सरकार केवल धन वसूलती है और कुछ भी नहीं करती।

श्रील प्रभुपाद : सरकार का कर्तव्य यह देखना होता है कि हर व्यक्ति अपनी क्षमता के अनुसार रोजगार पाए। बेरोजगारी नहीं रहनी चाहिए। यह समाज के लिए अति खतरनाक स्थिति है। लेकिन सरकार ने लोगों को जमीन से हटा कर शहरों में ला पटका है। ऐसा लगता है, सरकारी अधिकारियों ने यह धारणा

बना रखी है, "जमीन पर इतने सारे लोगों के काम करने से क्या लाभ? इसके बजाए हम पशुओं को मार कर खा सकते हैं।" यह अति सरल है, क्योंकि आजकल लोग कर्म के नियम की कोई परवाह नहीं करते, जिसके अनुसार पापों का फल अनिवार्य है। यदि हम गौवों को खा सकते हैं, तो फिर जमीन जोतने में इतना कष्ट क्यों उठाएँ? यह सारे संसार में चल रहा है।

अत्रेय ऋषि दास : हाँ, खेतिहरों के बेटे खेती छोड़-छोड़ कर शहर जा रहे हैं।

श्रील प्रभुपाद : इस 'टापलेस' 'बाटमलेस' की बेहूदगी को जानते हो? नेतागण इसे चाहते हैं। वे चाहते हैं कि होटल वाले कालेज की छात्राएँ उठा ले आएँ और वे अतिथियों के द्वारा भोगी जाएँ। सारे विश्व में समग्र जनता दूषित हो रही है। तो लोग अच्छी सरकार की उम्मीद कैसे कर सकते हैं? इन्हीं में से कुछ लोग सरकारं का भार सँभालेंगे, किन्तु वे भ्रष्ट हैं।

अतएव जहाँ-जहाँ हमारे हरे कृष्ण केन्द्र हैं, वहाँ-वहाँ हमें तुरन्त ही लोगों को प्रशिक्षित करने के कालेज स्थापित करने होंगे, ये उनकी स्वाभाविक प्रतिभा के अनुसार होने चाहिए (बौद्धिक, प्रशासनिक, उत्पादक तथा श्रमशील)। और हम जिन आध्यात्मिक कार्यों को बताएँगे उन्हें सम्पन्न करके—हरे कृष्ण मन्त्र का कीर्तन करके, *भगवद्गीता* से आत्म-साक्षात्कार के विज्ञान को सुनकर और हर कार्य को कृष्ण को अर्पित करके—वे आध्यात्मिक जागरूकता तक ऊँचे उठ सकेंगे। तब हर व्यक्ति का जीवन भगवान् की भक्तिमय सेवा का बन सकेगा।

साथ ही, व्यावहारिक मामलों के प्रबंध के लिए हमें विभिन्न सामाजिक विभागों को संगठित करने और प्रशिक्षित करने की आवश्यकता पड़ेगी, क्योंकि लोग विभिन्न प्रकार के मस्तिष्क वाले होंगे। जिनकी बुद्धि तेज हो उन्हें ब्राह्मण यानी पुरोहित, शिक्षक, सलाहकार बनना चाहिए। जो लोग प्रबन्धन तथा अन्यों की सुरक्षा के लिए उपयुक्त हों, उन्हें क्षत्रिय यानी प्रशासक एवं सैनिक बनना चाहिए। जो लोग अन्न उत्पन्न करने तथा गौवों की रखवाली करने में उपयुक्त हैं, उन्हें वैश्य यानी व्यापारी बनना चाहिए। और जो अन्यों की सहायता कर सकें और शिल्प तथा उद्यम अपना सकें, उन्हें शूद्र यानी श्रमिक बनना चाहिए।

सामाजिक संगठन में, हमारे शरीर की ही तरह, कार्य का विभाजन होना चाहिए। यदि हर कोई मस्तिष्क (बौद्धिक) या बाहें (प्रशासक) बनना चाहे, तो फिर उदर (किसान) या पाँव (श्रमिक) कौन बनेगा? हर प्रकार के पेशे (वृत्ति) की आवश्यकता है। मस्तिष्क चाहिए, बाहें चाहिए, उदर चाहिए और पाँव चाहिए। अतः आपको सामाजिक शरीर को संगठित करना होगा। आपको लोगों को भगवान् के प्राकृतिक सामाजिक विभागों को समझने में सहाय करनी है कि कुछ लोग मस्तिष्क का कार्य करेंगे, कुछ बाहों का, कुछ उदर का और शेष पाँवों का। मुख्य उद्देश्य सामाजिक शरीर को पूरी तरह स्वस्थ रखना है।

आपको यह देखना होगा कि हर व्यक्ति ऐसे पेशे में लगें,

जिसके लिए वह उपयुक्त है। यह महत्त्वपूर्ण है। बात यह है कि

हर प्रकार का कार्य भगवान् की सेवा हो सकता है—मुख्य बात है यह देखना कि लोग अपने स्वाभाविक कार्य में इसी भावना में लगे रहें। उदाहरणार्थ, जब आप चलते हैं, तो आपका मस्तिष्क कार्य करता रहता है, "इधर चलो, उधर जाओ, मोटर आ रही है" और आपका मस्तिष्क पाँवों से कहता है, "इधर आ जाओ।" मस्तिष्क का कार्य तथा पाँवों का कार्य भिन्न-भिन्न है, लेकिन मुख्य बात एक ही है—सड़क पार करते हुए आपकी सुरक्षा। इसी तरह सामाजिक शरीर की मुख्य बात एक ही होनी चाहिए—हर एक को कृष्ण की सेवा करने में सहायता करना।

सत्स्वरूप दास गोस्वामी : क्या ऐसा कालेज सामान्य जनता के लिए होगा?

श्रील प्रभुपाद : हाँ, हर एक के लिए। उदाहरणार्थ, इंजीनियरी कालेज हर एक के लिए खुला होता है। आवश्यकता केवल इतनी रहती है कि लोग प्रशिक्षित होने के लिए तत्पर हों। यह हमारा सबसे महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम है, क्योंकि विश्व भर के लोग इन तथाकथित नेताओं के द्वारा गुमराह किये जा रहे हैं। बच्चे कृष्णभावनाभावित प्रारम्भिक पाठशाला में जा सकते हैं और जब वे बड़े हो जाँय, तो वे अपने-अपने पेशों तथा अपने भक्तिमय जीवन में आगे विकास के लिए कृष्णभावनामय कालेज में जा सकते हैं।

अत्रेय ऋषि दास : क्या हम उन्हें व्यापार भी सिखायेंगे?

श्रील प्रभुपाद : इस आधुनिक व्यापार को नहीं। कभी नहीं। यह धूर्तता है। व्यापार का अर्थ यह है कि पर्याप्त अन्न तथा अन्य

फसलें उगाना, जिससे आप अच्छी तरह खा सकें और सबों को—मनुष्यों तथा पशुओं (विशेषतया गौवों) को—बाँट सकें जिससे वे हृष्ट-पुष्ट बन सकें। इस तरह गौवें दूध दे सकती हैं और मनुष्य जाति बिना रोगी बने कठिन परिश्रम कर सकती है। हम मिलें तथा फैक्टरियाँ नहीं खोलेंगे। कदापि नहीं।

यदुबर दासः श्रील प्रभुपाद, कला तथा हस्तशिल्प किस श्रेणी में आते हैं? आधुनिक समाज में कलाकारों तथा संगीतज्ञों को दार्शनिक समझा जाता है।

श्रील प्रभुपाद : नहीं। कलाकार एक कामगार होता है। इस समय आपके कालेजों तथा विश्वविद्यालयों में कला तथा हस्तशिल्प पर बहुत जोर दिया जाता है। इसलिए सारी जनसंख्या कामगार है। कोई असली दार्शनिक नहीं है। कोई ज्ञान नहीं है। यही कठिनाई है। हर व्यक्ति अधिक वेतन पाने के लिए लालायित है। वे तथाकथित प्रौद्योगिक या वैज्ञानिक शिक्षा प्राप्त करते हैं और फैक्टरी में काम करने में उसका समापन करते हैं। निस्सन्देह, वे खेत में फसलें उत्पन्न करने के लिए काम नहीं करेंगे। ऐसे लोग दार्शनिक नहीं हैं। दार्शनिक वह है, जो परम सत्य की खोज करता हो।

आपके पाश्चात्य देशों में धूर्तगण यौन-दर्शन के विषय में लेखनी चलाते हैं, जो कुत्ते तक को ज्ञात है। इस तरह के दर्शन की प्रशंसा धूर्तगण ही करेंगे, हम कभी नहीं कर सकते। जो कोई परम सत्य की खोज करता है, तो वह दार्शनिक है—यह धूर्त फ्रायड नहीं, जो विस्तार से यह बताता है कि संभोग कैसे करना

चाहिए। पाश्चात्य देशों में सभी लोग निम्न श्रेणी के बन चुके हैं और फ्रायड उनका दार्शनिक बन गया है। "जंगल में सियार भी राजा बन जाता है।" बस।

इस तथाकथित पाश्चात्य दर्शन में वास्तविक ज्ञान क्या है? सारा पाश्चात्य जगत उद्योग के पीछे— धन कमाने के लिए संघर्ष कर रहा है, "खाओ, पीओ और मौज करो" के लिए, शराब तथा स्त्रियों के पीछे दीवाना है। बस। वे निम्नश्रेणी से भी गये-गुजरे हैं। हम पहली बार उन्हें मनुष्य बनाने का प्रयास कर रहे हैं। मेरे कटु शब्दों का बुरा मत मानियेगा—यह तथ्य है। वे पशु हैं, दोपाये पशु। तिरस्कृत व्यक्ति। वैदिक सभ्यता उन्हें अधम कह कर उनका तिरस्कार करती है, किन्तु उनका उद्धार किया जा सकता है।

पश्चिमवासियों का उद्धार किया जा सकता है, जिस प्रकार तुम सब मेरे पश्चिमवासी छात्रों का उद्धार किया गया है। यद्यपि तुम लोग निम्नतम स्थिति से आये हो, किन्तु प्रशिक्षित होकर तुम लोग ब्राह्मण से भी बढ़कर बन रहे हो। किसी के लिए कोई अवरोध नहीं है। लेकिन दुर्भाग्यवश ये धूर्तगण इस सुअवसर को स्वीकार करने के लिये राजी नहीं होते। जैसे ही आप कहेंगे कि "अवैध यौन बन्द, मांसाहार बन्द" त्योंही वे क्रुद्ध हो उठते हैं। ये धूर्त तथा मूर्ख! ज्योंही कोई उन्हें सदुपदेश देता है—शिक्षा देता है—वे क्रुद्ध हो उठते हैं। साँप को दूध और केला देने से उसका विष और भी बढ़ता है।

किन्तु कृष्ण की कृपा से किसी तरह भी आप लोग प्रशिक्षित

हो रहे हैं। प्रशिक्षित होकर आप लोग पाश्चात्य सभ्यता के विशेषतया अमरीका में सारे ढाँचे को परिवर्तित कर देना। तब नये अध्याय की शुरुआत होगी। यही हमारा कार्यक्रम है। इसीलिए कृष्णभावनाभावित कालेजों की आवश्यकता है। •

लेखक-परिचय



कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद ६९ वर्ष की अवस्था में सन १९६५ में अपने गुरु महाराज के आदेशानुसार अंग्रेजी भाषी विश्व में कृष्णभावनामृत का प्रचार करने के लिए अमेरिका गये। बारह वर्षों की अल्प अवधि में उन्होंने वैदिक साहित्य के अंग्रेजी अनुवाद और भाष्य के रूप में ५० से अधिक ग्रंथरत्न प्रस्तुत किये। उनके द्वारा अंग्रेजी में अनूदित वैदिक ग्रंथ उनकी अधिकृतता, गहराई व स्पष्टता के कारण विद्वत्समाज में सम्मानप्राप्त तथा विश्व के अनेक विश्वविद्यालयों के उच्चस्तरीय पाठ्यक्रमों में मान्यताप्राप्त हैं। इसके साथ ही साथ कृष्णभावनामृत का प्रचार करने हेतु वे सम्पूर्ण विश्व में निरन्तर भ्रमण करते रहे। सन १९६६ में उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ की स्थापना न्यूयॉर्क में की। उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ को अपने कुशल निर्देशन से सौ से अधिक मन्दिरों, आश्रमों, गुरुकुलों एवं कृषि-समुदायों का एक बृहद् संगठन बना दिया। सन् १९७७ में उन्होंने कृष्ण की प्रिय एवं पावन लीलाभूमि वृन्दावन में लौट कर इस धरा-धाम से प्रयाण किया। उनके शिष्यगण उनके द्वारा स्थापित आन्दोलन को आगे बढ़ाने में सतत प्रयत्नशील हैं। •

शब्द-सूची



यह पुस्तक इस्कॉन के संस्थापकाचार्य श्रील प्रभुपाद के साथ बातचीत के रूप में निबन्धों का संग्रह है। श्रील प्रभुपाद पुनर्जन्म, अनियंत्रित यौन, गोहत्या, मांस-भक्षण, आत्मा का अस्तित्व, समाज का सुधार, वैज्ञानिक प्रगति इत्यादि विषयों पर वैदिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। श्रील प्रभुपाद की शिक्षा तथा उनका जीवन यह प्रदर्शित करते हैं कि प्राचीन वेदों का सन्देश किसी भी तरह पुराना नहीं हो गया है, किन्तु यह आधुनिक काल में भी सभी लोगों के लिए सुसंगत है।





भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट